# कल्कि अवतार

प्रकाश नारायण मिश्र

# कल्कि अवतार

प्रकाश नारायण मिश्र

बहाई पब्लिशिंग ट्रस्ट
पोस्ट बाक्स : १९
नई दिल्ली

१९७७

मुद्रक : बंगाल प्रेस दिल्ली-६.

# भूमिका

जब से इस देश में कल्कि-अवतार विषयक विभिन्न पुस्तकों का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ और जनता को यह ज्ञात हुआ है कि कल्कि-अवतार के प्राकट्य का समय व्यतीत हो चुका है, तभी से नकली अवतारों की बाढ़ सी आई हुई है। पिछले ईश्वरीय अवतारों की कथायें पढ़कर तथा उनकी लीलायें देखकर, लोग उसी भांति की कल्पनाओं के अन्तर्गत आज के ईश्वरीय अवतार को देखने की आशा करते हैं। अतः जनता की इस मनोवृत्ति को दम्भी और ढोंगी समझकर अपने को अवतार के रूप में प्रसिद्ध कर उसे धोखा देकर ठग रहे हैं। समय-चक्र बड़ा बलवान है ऐसे अनेकों ढोंगियों का भण्डा फूट चुका है और आज उनके अस्तित्व तक का पता नहीं है। आगे भी क्या होगा समय बतायेगा। बहुत से अवतार बनकर आये पर किसी ने भी यह नहीं कहा कि मैंने ही कल्कि-अवतार की सभी भविष्यवाणियां पूरी की हैं क्योंकि इस सम्बन्ध की भविष्यवाणियों का अत्यन्त गूढ़ ग्रंथ कल्कि-पुराण है जिसके रहस्यों को समझना उनके वश की बात नहीं। आज मानव समाज अपने दुःखों से त्रस्त है अतः इधर-उधर भटकता फिरता है। महात्मा तुलसीदास जी ने इसी हेतु लिखा है :—

**सुगम उपाय पाइवे केरे। नर हतभाग्य देहिं भट भेरे॥**

जनता को इस पशोपेश की स्थिति से निकालकर सही दिशा निर्देश देना हम अपना सर्वोच्च कर्तव्य समझते हैं अतः उन कृपानिधि की असीम कृपा से इस रहस्य को अपने हृदय

में जानकर वर्षों तक इनकी प्रामाणिकता पर गहराई से मनन करके इस छोटी सी पुस्तक के रूप में संक्षेप में दे रहे हैं। पाठकों से इस विषय में नम्र निवेदन है कि वे इस पुस्तिका में दिये हुए विभिन्न तर्कों पर स्वय भी गम्भीरता से खोज करके अपने स्वतंत्र निष्कर्ष निकालें। उन्हें उनके इस कार्य में सहायता हेतु हमने यथासम्भव सभी संदर्भित पुस्तकों के अध्याय तथा श्लोकों की क्रम संख्या भी दे दी है। लेखक का यह प्रयास तो बहुत ही साधारण सागर में एक बूंद के समान है क्योंकि इस सम्बन्ध की विशाल सामग्री संतवाणियों के रूप में अनेकानेक भारतीय भाषाओं में बिखरी पड़ी है। इस देश में एक विशेष काल ही में प्रकट होने वाले भक्तिकालीन सन्तों ने अपनी आध्यात्मिक शक्ति से इस परम गोपनीय रहस्य को जानकार उस परम पवित्र 'ऋषीश्वर' की स्तुति में अनेकानेक गीत गाए हैं जिन्हें देखकर भारी अश्चर्य होता है। इस देश के भावी श्रद्धालु खोजी विद्वान निस्सन्देह बड़े यश के भागी होंगें जो उस सामग्री को प्रकाश में लाएंगें।

सन् १९७२ में लेखक की इसी विषय की पुस्तक **'कल्कि-अवतार की खोज'** प्रकाशित हुई थी उस पुस्तक की सभी प्रतियां हाथों हाथ समाप्त हो गईं। तभी से उसके द्वितीय संस्करण के प्रकाशन की माँग पर मांग आ रही थी। उसके लिए आवश्यक साधनों की व्यवस्था करना बड़ा कठिन था क्योंकि लोगों की मांग पूरी करने हेतु उसे हजारों की संख्या में प्रकाशित कराना एक समस्या है। अतः शीघ्र ही लोगों की मांग पूरी करने हेतु यह विकल्प सुझाया गया कि इस विषय का एक संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित किया जाय। अतः इस विषय की सभी आवश्यक बातों का संक्षेप में समावेश करके इस नई

पुस्तक "कल्कि-अवतार" का यह संस्करण पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।

मोह तथा पक्षपात के अन्धकार से ग्रस्त कुछ लोगों को सत्य का यह ज्ञापन अखरेगा। उनसे भला क्या कहा जा सकता है जो ईश्वर को भी अपनी कल्पना तथा इच्छाओं के अनुसार चलाना चाहते हैं। अतः श्रद्धालु पाठकों से यही निवेदन है कि यह रहस्य निम्न प्रकार के सज्जनों को ही देने की कृपा करें—

श्रोता सुमति सुशील शुचि, कथा रसिक हरिदास।
पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास॥
रारचरित मानस (उत्तरकाण्ड)।

शिवरात्रि
संवत् २०३३ वि०

प्रभु धर्म प्रसार में
प्रकाश नारायण मिश्र

# ॥ वन्दना ॥

मूक होई वाचाल, पंगु चढ़इ गिरिवर गहन।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवउ सकल कलिमल दहन॥

जिनकी कृपा से मूक वाचाल हो जाते हैं और पंगु ऊंचे-ऊंचे पर्वतों पर भी चढ़ जाते हैं, उन भगवान 'दयाल' को, जो सर्व कलियुग के पापों को नष्ट करने वाले हैं, मैं नमस्कार करता हूं।

उन्हीं 'दयाल' भगवान विष्णु के शिव स्वरूप भगवान शम्भु को, जो समस्त भुवनों के मध्य में पृथ्वी रूपी कमल की कर्णिका की भांति सुवर्णमय सुमेरु पर, काश्यप-सागर के मध्य में स्थित मन्दराचल नामक ज्योति:स्थल शिखर पर साक्षात तप:स्वरूप आदि ज्योर्तिलिंग के रूप में पवित्र अरुणाचल तीर्थ वासी हैं तथा वासुकि नाग के वंशजों से आवृत हैं, जिनके जटा-जूट मय केशों से भगवान ब्रह्मा के कमण्डल में स्थित जलधार के समान साक्षात सुर-सरि धर्म गंगा प्रवाहित हुई है, जो संसार रूपी सागर के समस्त प्राणियों के कलि-मल का प्रक्षालन करने वाली है, उस धर्म-गंगा के प्राकट्यकर्त्ता, संसार रूपी सागर का पाप रूपी गर (विष) पायी को मैं बारम्बार नमस्कार करता हूं। वे भगवान 'शम्भु' मुझ अज्ञानी, अपावन, कलिमल ग्रसित क्षुद्र प्राणी को संसार के इस महानतम रहस्य को अनावृत करने की शक्ति प्रदान करें।

प्रत्येक द्वापर युग में प्रकट होने वाले भगवान वेद व्यास, महर्षि कृष्ण द्वैपायन, जिन्होंने संसार के लिए उस ईश्वरीय ज्ञान को सुलभ करके वेदों का सम्पादन किया तथा अनेकानेक

रहस्यों से युक्त अनेकों पुराणों की रचना की उन दिव्य-ज्ञानी 'कलाप' ग्राम स्थित साक्षात ज्ञानस्वरूप को मैं बारबार नमस्कार करता हूं। वे भगवान व्यास मुझे अपनी रचनाओं का रहस्य जानने की शक्ति प्रदान करें, जिससे मैं भगवान विष्णु के इन कल्कि-अवतार के रहस्य को प्रकट कर सकूं।

उन सब देवात्माओं को, जिन्होंने कलियुग के प्रतीक्षयकाल में इस पृथ्वी पर जन्म लिया और अपने उपदेशों द्वारा समस्त जनों को भक्ति तथा मानवीय एकता की शिक्षायें दीं, अपनी रचनाओं में उन गूढ़ रहस्यों तथा संकेतों को दिया, जिनका अध्ययन करके आगे आने वाली पीढ़ियाँ कल्कि-अवतार को पहचान सकें, मैं नमस्कार करता हूँ। वे सब संतात्मा मुझे अपनी-अपनी वाणियों का रहस्य जानने की सामर्थ्य प्रदान करें।

कल्कि-अवतार के साथ प्रकट होने वाले प्रातः स्मरणीय उन अनेकों संतों (ऋषियों) को जो उनके नाम पर बलिदान हो गये तथा उन ज्ञात तथा अज्ञात सहस्त्रों धर्म-बलिदानियों को मैं नमस्कार करता हूं। वे सब मुझ अशक्त को अपना आर्शीवाद दें ताकि मैं इस महान रहस्य को प्रकट करने की सामर्थ्य पा सकूं।

इस दिव्य-साम्राज्य का और सत्ययुग के संस्थापक उस विश्व-व्यापी विधान का गुरुतर भार उठाने वाली उन धर्म-भुजाओं को मैं नमस्कार करता हूं। वे मुझे आशीर्वाद दें कि मैं इस रहस्य के प्राकट्य का यह गुरुतर भार उठा सकूं।

अपने सभी शिक्षकों को, जिन-जिन से मैंने जब-जब कुछ सीखा तथा समय-समय पर जिन्होंने मुझे प्रेरणायें दीं, उन अंधेरे में प्रकाश देने वाले, सभी मार्गदर्शकों को मैं बार-बार नमस्कार करता हूं। वे मुझे अपना आशीर्वाद दें ताकि मैं इस गुरुतर भार को वहन करने की सामर्थ्यं पा सकूं।

### ईश्वर का अस्तित्व

सृष्टि के कार्यकलापों पर विचार करें तो हमें ज्ञात होगा कि इसके प्रत्येक अवयवों में एक व्यवस्था है। उदाहरण के लिए उस सृष्टि की एक महान रचना सूर्य को देखिये—वह अपने निश्चित समय पर प्रातः क्षितिज से उदित होता हुआ दिखाई देता है और सायंकाल एक निश्चित समय पर अस्त हो जाता है। हर ऋतु में वह एक निश्चित स्थान पर दिखाई देता है जो पृथ्वी पर ऋतुओं की सृष्टि करता है। इसी के कारण समय पर ग्रीष्म, वर्षा और तत्पश्चात् शरद् और हेमन्त आदि ऋतुओं का आगमन होता है। मानव के जन्म पर ही विचार करें तो उसके भी शरीर धारण करने और जन्म लेने की प्रक्रिया में एक व्यवस्था दिखाई देती है। सृष्टि की यही व्यवस्था हमें सोचने को विवश करती है कि इस सम्पूर्ण सृष्टि रचना के पीछे अवश्य ही कोई एक विशाल मस्तिष्क सदैव कार्यरत है। वही सृष्टा या परमात्मा के नाम से जाना जाता है। उसे हम देख नहीं सकते। मात्र उसकी अपरिमित शक्तियों को देख कर उसकी विद्यमानता का अनुभव कर सकते हैं। इसी प्रकार हम अनुभव द्वारा ही यह भी ज्ञात कर सकते हैं कि इस सृष्टि के प्रत्येक कार्यकलाप की पृष्ठ-भूमि में उस सृष्टा का निश्चय ही कोई न कोई प्रयोजन है।

### मानवात्मा—

क्या उस सृष्टा की सर्वश्रेष्ठ रचना मनुष्य को जन्म देने में भी उसका कोई प्रयोजन है ? अथवा निष्प्रयोजन ही इस धरती

पर उसकी सृष्टि की गई है। गहराई से इस पर विचार करे तो हमें ज्ञात होगा कि उस नियन्ता का मानव को इस संसार में जन्म देने, उसे एक निश्चित जीवन देने और अन्त में मृत्यु द्वारा उसका वह शरीर भी नष्ट कर देने में अवश्य ही कोई बहुत ही बड़ा प्रयोजन है। निश्चय ही इस नश्वर शरीर से परे भी कोई वस्तु है जो इसके नाश होने पर भी नष्ट नहीं होती है। वह है—"मानवात्मा" जो कभी मरती नहीं, जलती नहीं, कभी नष्ट नहीं होती। इसी आत्मा के लिये गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है :—

**नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावक :।**
**न चैन क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत :॥२।२३॥**

**धर्म का प्रयोजन**

यही 'मानवात्मा' इस संसार में मनुष्य शरीर धारण करके अनेकानेक भोगों को भोगती है। ईश्वरेच्छा से ही उसे जीवन यापन के अनेकों साधन उपलब्ध कराये जाते हैं किन्तु उसका साध्य कुछ और ही है जो अत्यन्त ही महत्वपूर्ण और महान् है। वह है इस संसार में कर्मों द्वारा उस आत्मा की निरन्तर आध्यात्मिक उन्नति, जो उसे उसके परम लक्ष्य **'भगवद्-प्राप्ति'** में सहायक हो सके। जब जब मनुष्य इस संसार के भौतिक प्रलोभनों में फंस पथ-भ्रष्ट होकर अपने इस चरम लक्ष्य को विस्मृत कर देता है तो धर्म ही एक ऐसा साधन है जो उसे दिशाहीन होकर भटकने से रोकता है, उसका पथ निर्दिष्ट करता और लक्ष्य प्राप्ति में उसका सहायक होता है।

**धर्म्म संस्थापक**

धर्म का यह पथ मनुष्य स्वयं ढूंढ़ने में असमर्थ है। उसके भौतिक चक्षु उसकी खोज में, उसकी तुच्छ बुद्धि उसे जानने, सम्भने और इस पर चलने में सर्वथा असमर्थ है। अतः ईश्वर ने मनुष्य को इस सम्बन्ध में असहाय और अकेला नहीं छोड़ दिया। जिस प्रकार उसने मनुष्य के भौतिक सुख-शान्ति के लिये इस जगत में अनेकानेक पदार्थों की सृष्टि की है उसी प्रकार उसकी आध्यात्मिक उन्नति में उसकी सहायता करने, उसे सही दिशा देने का भी उसने प्रबन्ध किया है। उसने मानव जगत को वचन दिया है कि जब जव इस संसार में उसकी आवश्यकता होगी वह अपनी आत्मा का सृजन करके एक 'दिव्य-शिक्षक' को इस संसार में प्रकट करेगा। जव जब संसार में धर्म की ग्लानि होकर अधर्म की ओर पाप बढ़ जाएगा, तव तब धर्म की रक्षा करने, उसका संस्थापन करने इस संसार में उसका प्रकटीकरण अवश्य ही होता रहेगा। गीता में भगवान कृष्ण ने जगत को यही वचन दिया है।

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥७॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥८॥

श्रीमद्-भगवद्गीता (अध्याय ४)

**दैवी शिक्षक**

मानव-जगत का इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस

पृथ्वी पर सदैव ही ये दैवी-शिक्षक आते रहे हैं। प्राचीन धार्मिक ग्रंथ इस बात को प्रमाणित करते हैं कि सृष्टि के आदिकाल से ही ईश्वरीय अवतार इस पृथ्वी पर प्रकट होते रहे हैं। मानव-सृष्टि की उत्पत्ति पर हम विचार करें तो हमें ज्ञात होगा कि इस पृथ्वी का सम्पूर्ण मानव-समुदाय एक ही पिता की सन्तानों के रूप में पृथ्वी पर वसा हुआ है। प्राचीन हिन्दू-ग्रंथ स्पष्टः इस वात की ओर संकेत करते हैं कि सृष्टि के रचियता ब्रह्मा के मानस पुत्र मरीचि और उनके पुत्र कश्यप ऋषि ही सम्पूर्ण मानव वशों के पिता थे। उनकी ही तेरह पत्नियों से कतिपय मानव वंशों की उत्पत्ति हुई है। पुराणाख्याओं में दिति नाम की पत्नी के दैत्य, अदिति के आदित्य और दनु के दानव आदि मानवों वंशों की उत्पत्ति का इतिहास दिया हुआ है। इन्हीं मानव वंशों को इस पृथ्वो पर तीन लोकों में बसाया गया था जिन्हें 'त्रिलोकी' कहा गया है। जिस समय ये मानव वश एक ही स्थान पर निवास करते थे तव उनका एक ही परिवार और उसी प्रकार उनका एक ही दैवी-शिक्षक अथवा धर्म संस्थापक था।

**प्रथम दैवी शिक्षक**

प्राचीन धर्म ग्रंथों में इन धर्म-संस्थापक को आदित्य (सूर्य), आदिम या आदम कहा गया है। गीता में धर्म की उत्पत्ति सूर्य या आदित्य ऋषि से वताई गई है। आदम शब्द अरवी के 'आद' शब्द से वना है जिसका अर्थ सूर्य है। अस्तु यह अनुमान किया जा सकता है कि यही आदम ही आदिम अथवा आदित्य (सूर्य) रहे हों। इन्हीं को शास्त्रों में विवस्वान भी कहा गया है।

इन्हीं विवस्वान के पुत्र वैवस्वत मनु को भी ईश्वरीय अवतार कहा गया है। इनके विषय में यह पुराणाख्या प्रसिद्ध है कि एक बहुत बड़ी जलप्रलय इनके जीवन काल में हुई थी। जिसमें तत्कालीन मानव बस्तियां, ग्राम नगरादि जल में डूब गये थे। तब ईश्वराज्ञा से इन्होंने एक बहुत बड़ी नौका का निर्माण किया था। इसमें अनेक मानव वंशों के जनक सप्तर्षियों, पशु पक्षियों तथा अनाजों व औषधियों के बीजों को रखकर सृष्टि के बीज तत्व की रक्षा की थी। प्रायः सभी प्राचीन धर्म ग्रंथों में थोड़े बहुत अन्तर से इस जलप्लावन की कथा मिलती है। बाइबिल के ओल्ड टैस्टामेंट की 'जैनेसिस' नामक पुस्तक में इन्हीं मनु को नोह (NOAH) कहा गया है। इस्लामिक धर्म शास्त्रों में यही मनु-नोह से हजरत 'नू' बन गये हैं। आश्चर्य है कि हजारों वर्षों के अन्तराल के पश्चात भी इस कथा तथा उसके नायक के नामों के उच्चारण में कितना साम्य है। प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डा० लियोनार्ड वूली ने इस जल प्रलय के स्थान का पता लगाकर अकाट्य पुरातात्विक प्रमाणों के आधार पर इसे ईराक व ईरान के मध्य स्थिर किया है।

यही मनु, नोह अथवा नू, वर्तमान सभी मानव-वंशों के संस्थापक थे। वे ही उस समय के सभी मानवों के एकमात्र 'दिव्य-शिक्षक, धर्म संस्थापक अथवा ईश्वरीय अवतार थे। हिन्दू-धर्म का प्रसिद्ध स्मृति-ग्रंथ, 'मनु-स्मृति' इन्हीं की दी हुई महान धर्म-व्यवस्था है। अतः निर्विवाद रूप से यह सिद्ध किया जा सकता है कि मनु के वंशज मानव अथवा (Man kind) सभी एक ही धर्म के अनुयायी थे। वे सब परस्पर प्रेम व भाईचारे की भावना से इस धरती पर एक साथ रहते थे। उनका

एक हीं कानून तथा एक ही संस्कृति थी। धर्म ग्रन्थों में आगे की घटना इस प्रकार बताई जाती है। बाइबिल में भी जिसका उल्लेख है कि ईश्वरीय-प्रेरणा से समस्त मानव-वंश इस पृथ्वी पर, दूर-दूर तक बसा दिये गये और धीरे-धीरे उनकी भाषायें भी बदलती चली गईं। ऋतुओं की भिन्नता के कारण उनके शरीर की बनावटों व रंगों में अन्तर आ गया। कालान्तर में भौगोलिक कारणों से इन सबका परस्पर सम्पर्क कम होते होते बिल्कुल ही टूट गया। ऐसी स्थिति में यह सम्भव नहीं हो सकता था कि एक ही दैवी शिक्षक सम्पूर्ण मानव-जगत को शिक्षित करने में समर्थ हो सके। अत: तीनों मानव-लोकों यथा-दैत्य दानव तथा असुरों का प्रथम लोक, देव, गन्धर्व, यक्षों व नागों आदि का दूसरा लोक तथा मनुष्यों, वानरों, किरातों आदि का तीसरा लोक इन तीनों लोकों में ही मुख्य रूप से तीन धर्म धारायें बहाई जाती रहीं।

**धर्मों के स्रोत स्थल**

वर्तमान इतिहास के अनुसार धर्म के ये तीनों स्रोत-स्थल क्रमश: सामी-देश (Semetic-Countries) ईरान तथा भारत माने जाते हैं। इन्हीं तीन स्थानों से मुख्यत: धर्म की तीन तथा कालान्तर में सात धर्म धारायें बहाई गईं, जो पुराणों में '**सप्त-गंगा**' के नाम से प्रसिद्ध है। ये 'सप्त-गंगा' अन्य कुछ नहीं इस विश्व के सात प्रमुख धर्मों की भविष्य-वाणियां हैं जो इस समय निम्न-नामों से जानी जाती हैं—

(१) साबी-धर्म (अफ्रीका) (२) सनातन-धर्म अथवा वैदिक धर्म (३) बौद्ध-धर्म (४) यहूदी-धर्म (५) पारसी-धर्म (६) ईसाई-धर्म (७) इस्लाम-धर्म

## एक धर्म की आवश्यकता

समय परिवर्तनशील है। वह कालचक्र ईश्वरीय प्रेरणा से सदैव घूमता रहता है। पिछली कुछ शताब्दियों की वैज्ञानिक प्रगति, आवागमन के साधनों तथा संचार व्यवस्थाओं ने, वे दीवारें जो भौगोलिक कारणों से इस पृथ्वी के निवासियों के मध्य खड़ी हुई थीं, ढा दी है। आज विभिन्न देशों के मध्य की दूरी सिमट कर छोटी रह गई है। भाषा और संस्कृति के अन्तरभी अपना महत्व खोते जा रहे हैं। आज भौतिक साधनों की पूर्ति में भी एक देश दूसरे देश पर निर्भर हुए बिना नहीं रह सकता। अतः ऐसी दशा में धर्मों का अलगाव भी एक अखरने वाली वस्तु हो उठा है। क्या उस सर्व द्रष्टा नियन्ता को इस परिवर्तित स्थिति का ज्ञान नहीं हो सकता था? वह तो स्वयं ही इसका नियामक है अतः उसकी दृष्टि से इस प्रकार की भावी स्थिति भला कैसे छिपी रह सकती थी? वह जानता था कि आगे चलकर विश्व को केवल एक ही धर्म की आवश्यकता होगी। अतः प्रभु-प्रेरणा से आज इस युग में संसार भर के मानव धर्मावलम्बियों को एक ही सूत्र में बांधने हेतु ऐसे महान् धर्म का अनुयायी बनाने की भूमिका बहुत पहले ही रच दी गई थी। एक ऐसा धर्म जो समस्त धर्मों का अविरोधी हो तथा संसार की अखण्ड एकता के उद्देश्य-प्राप्ति में सहायक हो सके। इस परम महान् धर्म की कार्य पूर्ति हेतु उपरोक्त प्रायः सभी धर्मों के संस्थापकों या अन्तिम ईश्वरीय अवतारों द्वारा भविष्य में एक ऐसे ईश्वरीय-अवतार के आगमन की भविष्यवाणियां की गई जो उनके धर्म को आगे ले जाकर विकास की चरम स्थिति तक पहुंचा दे और समस्त संसार को उस धर्म का अनुयायी बना दे। ये भविष्यवाणियां उनके स्वयं के धर्मशास्त्रों में यत्र-

तह दी हुई हैं। इन सभी भविष्यवाणियों के आधार पर प्रायः हर धर्म के मतावलम्बी अपने धर्म में किसी न किसी ईश्वरीय अवतार की प्रतीक्षा में सदियों से लगे हैं जो उनके धर्म को आगे ले जाकर समस्त संसार में भविष्यवाणियों के अनुसार सम्पूर्ण पृथ्वी पर शान्ति व एकता का एक नवीन युग लाने में सफल होगा।

सनातन धर्मी हिन्दू अच्छी तरह जानते हैं कि उनके धर्म ग्रंथों में एक महान ईश्वरीय अवतार की भविष्यवाणियां हैं जो विष्णु का दसवां अवतार 'कल्कि विष्णुयशा' नाम से इस संसार में कलियुग के अन्त में प्रकट होगा। वह संसार भर से पाप का नाश करके उसी सनातन वैदिक धर्म की स्थापना करके नये सत्ययुग का संस्थापक होगा।

इसी प्रकार पृथ्वी भर के ईसाई चाहे वे किसी भी चर्च से सम्बद्ध हों एकमन से इस बात को स्वीकार करते हैं कि उनके 'क्राइस्ट' का पुनरागमन होगा। स्वंय ईसामसीह ने स्पष्ट ही कहा है "I will come again in the glory of my Father"। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वह 'Glory of god' के नाम से प्रकट होगा।

पृथ्वी के समस्त जोरास्ट्रियन जो पारसी धर्म के अनुयायी हैं अपने ग्रंथों की भविष्यवाणियों के अनुसार एक महान ईश्वरीय-अवतार 'शाह बहराम वरजावन्द की प्रतीक्षा' कर रहे हैं।

इसी प्रकार बौद्ध धर्मावलम्बी स्वयं भगवान बुद्ध द्वारा की गई भविष्यवाणियों के अनुसार एक महान धर्मावतार "**मैत्रेयि अमिताभा**" की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

'इस्लाम-धर्म' की पुस्तकों के अनुसार समस्त मुसलमानों का भी यह विश्वास है कि कयामत के वक्त हजरत इमाम मिहदी का जहूर होगा और उनके बाद मसीहा का पुनरागमन 'रुहूल्लाह' के रूप में होगा।

सिख-धर्म में भी उनके दसवें गुरु गोविन्दसिंह जी के वचनानुसार एक 'निष्कलंकी-अवतार' 'कल्कि' नाम से प्रकट होगा।

**अब एक ही दैवी शिक्षक**

अब यहां प्रश्न उठता है कि यदि उपरोक्त भविष्यवाणियों के अनुसार सभी धर्मों के अलग-अलग ईश्वरीय-अवतार आ गये और उनके स्वयं के धर्मों की पुनर्स्थापना और उन्नति में लग गये तो फिर इस विश्व की एकता कैसे स्थापित हो पाएगी ? क्या इस प्रकार मानवों की आध्यात्मिक एकता का उद्देश्य तथा उसका स्वरूप ही छिन्न-भिन्न नहीं हो जाएगा।

समस्त धर्मों की उपरोक्त भविष्यवाणियों के निष्पक्ष और गम्भीर अध्ययन के पश्चात इस महान आश्चर्यजनक तथ्य का पता चलता है कि ये समस्त भविष्यवाणियां किन्हीं अलग-अलग ईश्वरीय अवतारों के लिए न होकर केवल एक ही 'महान' ईश्वरीय-अवतार की ओर इंगित करती हैं, यह बात इस महत्वपूर्ण सत्य को भी प्रस्थापित करती है कि संसार के सभी धर्म अलग-अलग होते हुए भी वस्तुतः एक ही ईश्वरीय-धर्म के अंग हैं। ईश्वर एक ही है और उसके द्वारा संस्थापित धर्म भी एक ही है, जो इस पृथ्वी के विभिन्न भागों में देश काल की स्थिति के अनुसार अलग-अलग ईश्वरीय अवतारों द्वारा संस्थापित किया गया है। जिनके ग्रंथ अलग भाषाओं में होते हुए भी एक ही ईश्वरीय-धर्म के ग्रंथ हैं। कल्कि-पुराण के

अनुसार इन विभिन्न ईश्वरीय अवतारों तथा उनके समस्त धर्म ग्रंथों को ही वेद कहा गया है।

**वेदा मामीश्वर प्रहुरव्यक्तं व्यक्तिमत परम ।**
**ते वेदा ब्राह्मण मुखे नाना धर्मे प्रकाशिता ।।**
(कल्कि पुराण)

अर्थ—वेद ही मेरा ईश्वर है जो परमतम व्यक्ति (विष्णु) द्वारा व्यक्त किया हुआ मत है वही वेद (ईश्वरीय ज्ञान) ब्राह्मण के मुख में नाना धर्मों में प्रकाशित किया गया है ।

**एक ही धर्म की आवश्यकता**

ब्रह्म पुराण में एक ईश्वरोय-धर्म की व्याख्या करते हुए ब्रह्मा जी, नारद जी को इस गूढ़ विषय का तात्पर्य बताते हैं—"नारद ! सुनो, में रहस्यमय उत्तम धर्म का वर्णन करता हूं। चार प्रकार के तीर्थ हैं, चार ही युग हैं। तीन गुण, तीन पुरुष और तीन ही सनातन देवता हैं। स्मृतियों सहित चार वेद बताये गये हैं। पुरुषार्थ भी चार ही हैं और वाणी के भेद चार ही हैं। ये सब समान हैं। धर्म सर्वत्र एक ही हैं। क्योंकि वह सनातन (सदैव से चला आने वाला है,) साध्य और साधन के भेद से उसके अनेक रूप माने गये हैं। धर्म के दो आश्रय हैं देश और काल। काल के आश्रित जो धर्म है वह सदा घटता बढ़ता रहता है। युगों के अनुसार उसमें एक-एक चरण की न्यूनता होती जाती है। कालाश्रित धर्म भी देश में सदा प्रतिष्ठित रहता है। युगों का क्षय होने पर भी देशाश्रित धर्म की हानि नहीं होती। जो धर्म दोनों आश्रयों से हीन है, उसका अभाव हो जाता है। अतः देश के आश्रित रहने वाला धर्म अपने चारों

चरणों के साथ प्रतिष्ठित होता है। देशाश्रित धर्म भिन्न-भिन्न देशों में तीर्थ रूप में स्थित रहता है। सत्ययुग में धर्म देश और काल दोनों के आश्रित होता है।"

उपरोक्त कथन स्पष्ट ही सत्ययुग में एक ही धर्म की ओर, जो देश व काल के आश्रित होता है, इंगित करता है। अत: यह निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि आज संसार को अलग-अलग धर्मों की नहीं अपितु एक ही महान "विश्वधर्म" की आवश्यकता है जिसका संस्थापक एक ही महान ईश्वरीय अवतार होगा। विभिन्न धर्मावलम्बी अपने धर्म की भविष्यवाणियों के आधार पर उसे पहचानकर, अपने ही धर्म का ईश्वरीय-अवतार मानेंगे उस पर विश्वास लायेंगे उससे प्रेम करेंगे, और उसकी आज्ञा का अक्षरश: पालन करेंगे।

इस घटना को सरल शब्दों में इस कहानी द्वारा भी समझाया जा सकता है। मान लीजिए कुछ मानव-परिवारकई पीढ़ियों से आकर एक नगर में बस गये हैं। वे सब अपने को अलग अलग समझते हैं। उनका आपस में कोई भी सम्बन्ध नहीं है। एक दिन अचानक ही उन सबके पास अलग अलग एक पत्र आता है कि अमुक तिथि को इतने समय पर पहुंचने वाली गाड़ी से उनके एक बहुत पुराने निकट के रिश्तेदार आ रहे हैं। वे प्रथम श्रेणी के डिब्बे से उतरेंगे। उनकी पहचान इस प्रकार होगी। अत: वे सब मानव-परिवार नियत समय स्टेशन पर अपने उन निकट सम्बन्धी को लेने आ पहुंचते हैं। नियत समय पर गाड़ी आती है और उसी डिब्बे से अनेकों नहीं केवल एक ही व्यक्ति निकलकर बाहर आता है। उसके सम्बन्ध में दी हुई पहचानों के आधार पर वे सभी परिवार इसकी ओर

दौड़ पड़ते है और बडे स्नेह व श्रद्धा से उसका स्वागत करते हैं। उन सबको यह देखकर वड़ा आश्चर्य होता है कि वह एक ही व्यक्ति उन विभिन्न मानव परिवारों में से किसी का पिता है, किसी का चाचा है, किसी का मौसा है और किसी का मामा है। इस तरह उस एक ही व्यक्ति को अपना रिश्तेदार पाकर वे सभी परिवार यह जान पाते हैं कि वस्तुतः वे सभी परस्पर सम्बन्धी हैं और उनकी आपस की दूरी व अलगाव तब से समाप्त हो जाता हैं।

**अवतार की आवश्यकता क्यों ?**

प्रायः लोग कहते हुए सुने जाते है कि हमारे पास पूर्ण धार्मिक व्यवस्था है अतः हमें अब किसी नवीन धर्म और उस की व्यवस्थाओं की आवश्यकता नहीं। हिन्दू-धर्म का मुख्य आधार उसकी प्राचीन वर्णाश्रम-व्यवस्था ही हैं जो विभिन्न स्मृतिकारों तथा धर्म व्यवस्थाकारों ने दी थी। आज का हिन्दू उनमें से कितनी व्यवस्थाओं का पालन कर पा रहा है इस पर जरा ध्यान दीजिये। वह वर्ण-व्यवस्था अब नाम-मात्र के लिये ही रह गई है। धर्म के आधार पर जिस महान व्यवस्था का निर्माण ऋषियों ने किया था वह आज बिखर चुकी है। किस वर्ण का कौन सा व्यक्ति आज अपने वर्ण से भिन्न वर्ण का क्या क्या कार्य कर रहा है यह बताने की आज आवश्यकता नहीं। आजीविका के सीमित साधनों ने इस वर्ण व्यवस्था को तोड़ने को विवश कर दिया है। समाज का एक वहुत वड़ा प्रतिशत आज अपने से भिन्न वर्ण वाला कार्य करने को विवश है।

## प्राचीन व्यवस्थाओं का टूटना

इसी प्रकार संस्कार व आश्रम व्यवस्थायें भी अब लगभग टूट चुकी हैं। स्मृतियों व धर्म शास्त्रों में दी हुई संस्कार व्यवस्थाओं का क्या कोई पूर्ण रीति से पालन कर पा रहा है? समय ने आज विवश कर दिया हैं कि मनुष्य अपनी सुविधा का मार्ग ग्रहण करे, अतः वह सुन्दर आश्रम व्यवस्था आज अपना महत्व खो चुकी हैं। कोई भी माता-पिता आज अपने बालक को २५ वर्ष तक उस कठिन ब्रह्मचर्याश्रम में भेजने को तैयार नहीं होगा न कोई उसके पश्चात ५० वर्ष तक की आयु तक गृहस्थाश्रम में रहने और तत्पश्चात वानप्रस्थ-आश्रम में जाने को तैयार होगा। ७५ वर्ष की आयु तक उसका जीवित रहना ही कठिन हैं अतः सन्यास लेकर वन में जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसी प्रकार वह सोलह संस्कारों की प्राचीन व्यवस्था भी अब बिखर गई है। अधिकांश लोगों को तो शायद पता भी नहीं होगा कि वे सोलह संस्कार क्या हैं? ऐसी परिस्थिति में उनके समग्रपूर्ण रूप से पालन करने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह सब लिखने का हमारा उद्देश्य किसी धर्म अथवा समाज की आलोचना करना नहीं अपितु वस्तुस्थिति से परिचित कराना है। समाज प्रगतिशील है अतः ये समस्त व्यवस्थायें है उसकी प्रगति के साथ नहीं चल पाने के कारण एक समय स्वयं ही महत्व हीन हो जाती हैं। प्रकृति का यही शाश्वत नियम है।

## युग धर्म की आवश्यकता

ऐसी स्थिति में समाज को उस प्राचीन व्यवस्था के स्थान

पर एक सर्वथा नवीन व्यवस्था की आवश्यकता है। ऐसी एक व्यवस्था, जो पूर्णतः वैज्ञानिक व तर्कपूर्ण हो। जो समय के चरणों के साथ-साथ चल सके, जो समाज की सर्वतोमुखी प्रगति और विकास में उसका मार्ग अवरुद्ध न करे बल्कि उसकी पूर्णता में उसकी सहायक बन सके। उन प्राचीन प्रतीकात्मक जटिल व्यवस्थाओं के स्थान पर सरल सामाजिक व्यवस्थाओं की जिनको मनुष्य समाज सरलता से पूरा कर पाने में समर्थ हो, इस समय किसी एक देश की नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानव-समाज की आवश्यकता है। यह कार्य मनुष्य स्वयं करने में सर्वथा असमर्थ है। वह यह जानने में नितान्त असमर्थ है कि उसके लिए क्या श्रेयस्कर है। एक बुद्धिमान और दूरदर्शी समाज शास्त्री भी ऐसी निर्भ्रान्त और सर्वमान्य समाज व्यवस्था देने में असमर्थ है। उसकी समझ की शक्तियाँ कितनी भी बड़ी होने पर भी उस बिन्दु तक पहुंचने में असमर्थ हैं जहाँ वह युग-दृष्टा या भविष्य-दृष्टा कहला सके। यह कार्य केवल ईश्वरीय अवतार का है जो त्रिकालज्ञ होता है। वही हमारी आवश्यकतायें समझने तथा उसके अनुरूप व्यवस्थायें देने की शक्ति रखता है।

**आस्थाहीनता की यह दुरावस्था**

जिधर दृष्टि डालिए उधर ही समाज में आस्थाहीनता दिखाई देती है। प्राचीन धर्म और उसकी व्यवस्थाओं से मनुष्य का विश्वास उठ जाने तथा उसे त्याग देने के कारण वह आज ऐसी स्थिति में जा पड़ा है जहां उसका आचरण वर्जनाहीन हो उठा है। विवेकहीन होकर बिना अपना भला सोचे विचारे वह स्वच्छन्दता के ऐसे गर्त में जा पड़ा है जहाँ

उसका सर्वनाश निश्चित है। इस आस्थाहीनता का सर्वोत्तम प्रतीक 'हिप्पी-संस्कृति' में देखा जा सकता है। इसका निरन्तर गहरे नशे में डूबकर अपनी मानसिक कुण्ठाओं को भुलाकर, वर्जनाहीन यौन आचरण आज संसार को किस गर्त्त में ले जा रहा है इस पर जरा विचार कीजिए। सबसे बड़ा खतरा तो यह हो गया है कि वे हमारे बर्तमान युवक-समाज के आदर्श बन गये हैं। वेष-भूषा तथा बाल वढ़ाने में उनकी नकल तो चारों ओर चल ही पड़ी है। इसका कारण क्या है? इस पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता है। इसका एकमात्र कारण यही है कि धर्म और संस्कृति की प्राचीन व्यवस्थाओं में उन्हें अब कोई आकर्षण नहीं रह गया बल्कि वह उन प्राचीन व्यवस्थाओं में अपना प्रगति-पथ अवरुद्ध पाता है। उन जटिल सामाजिक प्रक्रियाओं को वह समय की माँग के विरुद्ध पाकर उनके प्रति विद्रोही और आस्थाहीन हो उठा है। प्राचीन व्यवस्थाओं को कितने भी आकर्षक या तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया जाय, आज का नव-युवक उनमें बंधने को तैयार नहीं है। इसका एकमात्र उपाय यही है कि आज समस्त संसार को ऐसी धार्मिक व सामाजिक व्यवस्थाए दी जाय जो वैज्ञानिक और तार्किक दृष्टि से पूर्ण तथा व्यवहारिक हों। जिनके अपनाने से मानव अपनी सर्वांगीण उन्नति कर सके।

**जीवन के उद्देश्य की अज्ञानता :**

बड़े ही आश्चर्य और दुःख का विषय है कि आज का मानव अपने जीवन के उद्देश्य के प्रति नितान्त अनजान है। एक सजग और सुशिक्षित व्यक्ति से भी उसके जीवन के उद्देश्य के विषय में प्रश्न करने पर हमें उसका संतोषजनक

उत्तर प्राप्त नहीं होता। सामान्यतः वह यही बतायेगा कि उसे जीवन में बहुत धनवान होना है, वह एक बड़े गृह तथा कार आदि जीवन के भौतिक साधनों की उपलब्धि को ही अपने जीवन का उद्देश्य बतायेगा। कोई कहेगा कि मैं अपने जीवन में सर्व सुखों की उपलब्धि करके संतोषमय जीवन बिता सकूं, यही मेरी कामना है। कोई एक प्रसिद्ध नेता या अभिनेता बनना ही अपने जीवन का उद्देश्य बतायेगा। इससे यह ज्ञात होता है कि आज का एक सामान्य मानव उदरपूर्ति ही अपना धर्म समझता है। अपने इस निकृष्ट उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह भयंकर रूप से स्वार्थ में लिप्त है। अपने लाभ के लिए आज का मानव किसी भी दूसरे मानव का बड़े से बड़ा अहित करने में भी नहीं चूकता। हजारों, लाखों तथा करोड़ों रुपए अनैतिकता तथा अप्रमाणिक मार्गों से कमाने पर भी उसकी धन की भूख और पैसे की प्यास नहीं बुझती।

**आर्थिक समस्याओं के निदान की आवश्यकता—**

उपरोक्त प्रवृति का परिणाम यह हुआ है कि एक ओर तो गगनचुम्बी अट्टालिकाएं दिखाई देती है, तथा दूसरी ओर फुटपाथों पर सोते हुए लोग। धन का एक स्थान पर आवश्यकता से अधिक एकत्रीकरण ही दूसरी ओर भयंकर गरीबी का कारण है। आज के अर्थतन्त्र की यह सामान्य प्रवृति है कि किसी आवश्यकताग्रस्त मानव की विवशताओं का लाभ उठाकर उसके श्रम का अधिक से अधिक शोषण करके उसे कम से कम पारिश्रमिक देना। चाहे भले ही वह थोड़ा सा धन उसकी दैनिक आवश्यकताएं तो क्या उसकी उदरपूर्ति में भी सहायक न हो। इसका परिणाम हैं मानव-जीवन में अभाव तथा अशान्ति।

गरीब अपनी गरीबी से त्रस्त है और अमीर अपनी अमीरी से। किसी का शोषण करके अधर्म से कमाया हुआ धन भला कहाँ तक और कब तक किसी को सुखी रख पाया है ? अतः इस बात की आवश्यकता है कि कोई अवतार पुनः आकर प्रभावशाली ढंग से आज के मानव को उसके जीवन का उद्देश्य समझाये। अपने दैवी आध्यात्मिक प्रभाव से वह मनुष्यों को धर्म का मार्ग समझाकर उन्हें उनके इस आत्मघाती मार्ग से हटाकर धर्म का सच्चा पथ दिखाये। जब तक आर्थिक समस्याओं का कोई न्यायपूर्ण आध्यात्मिक निदान नहीं होगा तब तक इस पृथ्वी पर स्थायी शान्ति की आशा करना व्यर्थ है।

**अन्ध विश्वास मुक्त वैज्ञानिक दृष्टि कोण की आवश्यकता—**

समाज में चारों ओर लोगों में अन्धविश्वास व्याप्त है। धर्म की प्राचीन सुन्दर व्यवस्थाओं में लोगों ने तरह-तरह की भ्रममूलक बातों की निरन्तर मिलावट करके अपने चारों ओर अनेकानेक अन्धविश्वासों का जाल बुन लिया है। उसमें फंसे हुए वे बुरी तरह छटपटा रहे हैं पर उससे मुक्त होना उनके वश की बात नहीं। उनकी धारणाओं में वैज्ञानिक दृष्टि-कोण तथा तर्क का नितान्त अभाव होते हुए भी मात्र इसी कारण वे उनसे चिपके चले आ रहे हैं क्योंकि वे उनके अपने पूर्वजों के विश्वास थे। उन रूढ़ियों को छोड़ते हुए वे डरते हैं कि ऐसा करके वे कहीं अधर्म का अनुसरण करके पाप के गर्त में न जा पड़ें। इसका परिणाम यह हुआ है कि हम समय के साथ पिछड़ गये हैं। हम न तो किसी प्रकार की आध्यात्मिक प्रगति ही कर पाये और न भौतिक ही। आश्चर्य तो तब होता है जब देखते हैं कि सुशिक्षित लोगों का आचरण भी इस

सम्बन्ध में बहुत ही पिछड़ा हुआ है। दूसरे मनुष्यों को तो सत्य मार्ग बताना दूर वे स्वयं भी रूढ़ियों व अन्धविश्वासों में जकड़े पड़े हैं। इनको तर्क सम्मत सिद्ध करने के लिए उन्होंने ऐसे ऐसे विचित्र प्रमाण ढुंढ़ लिये हैं जो समझ से परे हैं। इन रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से उन्हें छुड़ाना साधारण मानव के वश की बात नहीं। कतिपय धार्मिक नेता उन कुसंस्कारों को समय की धारा के प्रतिकूल पाकर भी उनका समर्थन तथा प्रचार करने को वाध्य हैं। उनके वश की बात नहीं कि वे उनका विरोध करके अपने धर्मानुयायियों से उन्हें छोड़ देने को कह सकें। यदि ऐसा करने का उन्होंने साहस किया तो समाज उन्हें जो मान-सम्मान देता है उससे उन्हें वंचित कर देगा। परिणामतः वे उन्हीं प्राचीन मान्यताओं व व्यवस्थाओं की समाज में पुनर्स्थापना करने को विवश हैं। पर उनके प्रति वे आधुनिक मानव समुदाय को आकर्षित कर पाने में नितान्त असमर्थ हैं। उनमें इतनी दूर दृष्टि व शक्ति नहीं कि वे उन प्राचीन धार्मिक व्यवस्थाओं और कर्मकाण्डों के स्थान पर कोई नवीन तर्क सम्मत धार्मिक व्यवस्था दे सकें जो समय की मांग के अनुसार और समस्त मानवता के लिए कल्याणकारी हो।

यह कार्य केवल ईश्वरीय अवतार का है। वही यह विवेक और दूरदृष्टि रखता है कि लोगों को उन तथाकथित धर्मों को छोड़ने को कहें जो लोगों ने इस समय धारण कर रखे हैं और वस्तुतः जिनका सत्य-धर्म से लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं है। भगवान कृष्ण जैसी महान शक्ति रखने वाले ईश्वरीय अवतार ही अपने अनुयायियों से यह कहने का साहस कर सकते हैं :—

**सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।**
**अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥८॥**

अर्थ—सर्व धर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्मों के आश्रय को त्यागकर केवल मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा तू शोक मत कर।

सम्पूर्ण देश के लिए एक सी धार्मिक व्यवस्था और आचार संहिता देना तो कठिन है ही किन्तु सम्पूर्ण विश्व के लिए एक सी व्यवस्था देना तो एक अत्यन्त ही कठिन कार्य है जिसे एक ईश्वरीय शिक्षक ही अपनी दिव्य दृष्टि से जानकर पूरा करने में समर्थ हो सकता है।

विश्व का सम्पूर्ण मानव समुदाय आज अनेकानेक टुकड़ों में बंटा हुआ है। जाति, वंश, रंग तथा धर्म आदि ने मानव जाति को असंख्य टुकड़ों में विभक्त कर दिया है। हमारे देश में जाति व्यवस्था का रूप बड़ा ही शोचनीय है। एक ही धर्म के अनुयायी अपनी प्राचीन व्यवस्था के अनुसार चार वर्णों के स्थान पर आज सैकड़ों जातियों में बटे हुए हैं। उनमें परस्पर खान पान तथा विवाह सम्बन्ध पर प्रतिबन्ध है। और तो और अभी तक भी कई जातियों को अस्पृश्य समझा जाता है। उनमें एकत्व स्थापित करने के तमाम प्रयत्नों के बावजूद वह अटूट एकता स्थापित नहीं हो पा रही है जो होनी चाहिये। प्राचीन धार्मिक व्यवस्थाकार उनमें सुधार करते हुए डरते हैं कारण कि ऐसा करते हुए कहीं वे अपने समाज का ढाँचा ही न बिगाड़ दें।

इसी प्रकार विश्व के मानवों में वंश-परम्परा के अभिमान भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। आज के समाचार पत्रों में

आप रंग भेद के कारण प्रायः परस्पर संघर्ष के विवरण पढ़ सकते हैं। विश्व इसके कारण आज प्रधानतः दो समुदायों में बँटा हुआ है। कई देश ही नहीं पूरे के पूरे महाद्वीप ही इस संघर्ष की लपेट में आ गये हैं।

धर्मों और उनके विभिन्न सम्प्रदायों की तो बात ही मत पूछिये। विश्व में अनेकों भयंकर युद्ध धर्म के नाम पर ही हुए हैं। जिनमें रक्त की नदियां बहाई गई हैं। हजारों ही नहीं लाखों मानवों ने एक दूसरे का रक्त मात्र इसलिए बहाया है कि उनकी धार्मिक आस्थायें भिन्न-भिन्न थीं। ईसाइयों और मुसलमानों के मध्य हुए सात धर्म युद्ध (Seven Crusades) इतिहास में प्रसिद्ध हैं जिनमें घुटने-घुटने भर रक्त के सागर तक भरे गये। धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर मानवता की धज्जियां उड़ाई गई हैं। जो धर्म मानव मात्र की एकता का अनिवार्यतः साधन है उसके अनुयायियों ने उसी के नाम पर मानवता पर ऐसे कलंक लगाए हैं जिनको स्मरण करते ही आत्मा काँप उठती है। जो धर्म ऐसे अनुयायियों को उत्पन्न करे तथा उन पर नियंत्रण न रख सके, ऐसे धर्म से तो अच्छा होता कि पृथ्वी पर कोई धर्म ही न होता। अतः मानवों का आचरण जब इतना भयंकर तथा वीभत्स हो उठे तब एक ईश्वरीय अवतार ही अपनी शिक्षाओं तथा दैवी प्रभाव से उनको अच्छा मानव बनाने की सामर्थ्य रखता है। ऐसे संकट-काल में भी ईश्वरीय अवतार मानवता को बचाने न आये तो फिर भला मानव उस तारणहार पर कैसे विश्वास करेगा? अधिकांश मानवों में धर्म के प्रति अश्रद्धा तथा कुण्ठा का मात्र यही कारण रहा कि इन तथाकथित धार्मिक व्यवस्थाओं के रक्षक तथा नेता अपने अनुयायियों पर किसी भी प्रकार का

प्रभाव डालकर नियंत्रण पाने में असमर्थ रहे ।

2

युद्ध प्रेमियों तथा रक्त पिहासुओं ने अपनी युद्ध-तृष्णा की तृप्ति हेतु अनेकानेक महाविनाशकारी शस्त्रास्त्रों की ही नहीं इस पृथ्वी के सम्पूर्ण मानव समाज को समूल नष्ट करने के प्रलयंकारी साधनों का आविष्कार कर लिया है । अणु तथा हाइड्रोजन बमों का इतना विशाल भण्डार आज इस विश्व के अनेकों राष्ट्रों के पास है जिससे यह पृथ्वी कई बार पूर्णतः नष्ट की जा सकती है । जापान के दो नगरों 'हिरोशिमा' तथा 'नागासाकी' को वे अपने इन प्रचंण्ड बमों से नष्ट कर चुके हैं जहाँ के प्राणिमात्र ही समूल नष्ट नहीं हुए अपितु वहाँ की जमीन भी अपनी उर्वरा-शक्ति खो चुकी है ।

शान्तिप्रिय राष्ट्रों ने विश्व संस्था संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से कई बार निःशस्त्रीकरण के प्रयत्न किए पर उन्हें आँशिक सफलता भी प्राप्त नहीं हो पाई है । इस बात की पूर्ण संभावना व्यक्त की जा सकती है जब कोई युद्धोन्मादी रक्त-पिपासु मात्र एक बटन दबाकर इस विशाल बारूद के ढेर में चिनगारी लगाकर इस विश्व को सम्पूर्णतः प्रलयंकारी विनाश के गर्त्त में ढकेल दे । इस चरम संकट से बचाने की शक्ति यदि किसी में हो सकती है तो केवल ईश्वरीय-अवतार में । वही इस पृथ्वी का तारणहार हो सकता है जो इसकी डगमगाती नौका को पार लगाये और अपनी दैवी शक्ति का प्रभाव मानवों पर डालकर उन्हें डूबने से उबार सके ।

## 3

उपरोक्त समस्याओं के अतिरिक्त आज सम्पूर्ण विश्व के सम्मुख ऐसी विकट समस्यायें हैं जिनका कोई निदान उनके पास नहीं है। आर्थिक समस्याओं के अन्तर्गत पृथ्वी के खनिज द्रव्यों के सम्पूर्ण विश्व में न्यायपूर्ण वितरण, पृथ्वी की बढ़ती हुई आबादी को बसाना, कृषि योग्य भमि का अभाव, विश्व में अनिवार्य शिक्षा, विश्व के मानवों के स्वास्थ्य, ऊर्जा संकट, पूर्ण निशस्त्रीकरण, औद्योगीकरण, विश्व-भाषा, खाद्य-समस्या आदि कितनी ही ऐसी समस्यायें हैं जिन्हें आज का विश्व सुलझाने में असमर्थ है। एक अखण्ड प्रभुसत्ता सम्पन्न विश्व-सरकार के माध्यम से ही इन्हें हल किया जा सकता है। ईश्वरीय विधान ही इसकी व्यवस्था दे सकता है तथा समस्त राष्ट्रों को नियंत्रण में रख सकता है।

इस समय इस देश में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में अनेकों व्यक्ति आये दिन अपने को ईश्वरीय अवतार बताकर जनता को ठग रहे हैं। यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि भोली भाली जनता ही नहीं अपितु बहुत से शिक्षित व्यक्ति भी बुरी तरह इनके प्रभाव में आकर अपने इहलोक तथा परलोक दोनों नष्ट कर रहे हैं। लोग अपनी दैनिक भौतिक समस्याओं की पूर्ति हेतु इनकी तरफ आंख बंद करके दौड़ रहे हैं जिनके पास इस विश्व के एक भी रोग की औषधि नहीं।

ईश्वरीय अवतार बहाउल्लाह के शब्दों में हम 'ईश्वरीय अवतार क्या है' इसकी चर्चा करेंगे :—

"वे शक्तियां जो उदारता और स्वर्गीय मार्गदर्शन के स्रोत रूपी सूर्य ने मानव सत्य को प्रदान की हैं वे उसमें उसी प्रकार सुषुप्तावस्था में छिपी है जिस प्रकार मोमबत्ती में लौ और दीपक में प्रकाश के किरणों की शक्ति छिपी है। इन शक्तियों का प्रकाश संसारी इच्छाओं के कारण धुंधला भी पड़ सकता है। जैसे कि सूर्य की ज्योति दर्पण पर जमी हुई धूल और मैल के नीचे छिप सकती है। मोमबत्ती और दीपक जिस प्रकार बिना सहायक प्रयत्नों के अपने आप नहीं जल सकते और न ही यह सम्भव है कि दर्पण अपने को मैल से मुक्त कर ले, उसी प्रकार यह स्पष्ट और सिद्ध है कि जब तक अग्नि न जलाई जाए दीपक कभी नहीं जल सकता और यदि दर्पण के धरातल से मैल न हटा दिया जाय तब तक वह सूर्य की आवृत्ति प्रदर्शित नहीं कर सकता और उसकी ज्योति और प्रताप को प्रतिबिम्बित नहीं कर सकता। कारण है कि अद्वैत ईश्वर और मनुष्य के बीच सीधे वार्तालाप की कोई श्रृंखला नहीं हो सकती और क्षणभंगुर और शाश्वत, अनिश्चित और निश्चित के बीच कोई सादृश्य नहीं हो सकता, इसलिए उसने यह व्यवस्था की है कि हर युग और व्यवस्था में एक पवित्र और शुद्ध आत्मा को स्वर्ग और पृथ्वी के राज्यों में प्रकट किया जाए। इस श्रेष्ठ, रहस्यमय और स्वर्गीय प्राणी के दो रूप निर्धारित किए गए हैं, भौतिक—जिसका सम्बन्ध पार्थिव जगत से है और आध्यात्मिक—जो स्वयं ईश्वर का अंश होता है।"

"प्रत्येक दृष्टि-सम्पन्न और ज्योतिर्मय हृदय के लिए यह सिद्ध है कि ईश्वर ऐसा तत्व है जो जाना नहीं जा सकता, दिव्य प्राणी है। प्रत्येक मानव गुण जैसे शारीरिक स्थिति,

चढ़ाव और उतार और आवागमन से परे अत्यधिक उच्च है। उसका यश इतना महान हैं कि कोई भी मानव जिव्हा उसका ठीक-ठीक वर्णन नहीं कर सकती, या मानव हृदय उसके रहस्य की असीम गहराई को नहीं समझ सकता। वह अपने पुरातन शाश्वत तत्व में छिपा हुआ है वह सदैव छिपा हुआ रहा है और अपने सत्य रुप में सदा ही मानव दृष्टि से छिपा रहेगा।" "कोई दृष्टि उसको पकड़ नही सकती किन्तु वह समस्त दृष्टियों में समाया हुआ है, वह सूक्ष्म है और सब कुछ देखने वाला है।"

"उस अतीत काल से भी पुरातन भगवान के ज्ञान के द्वार इस प्रकार समस्त प्राणियों के सामने बन्द हैं। वह अनन्त दया का स्रोत है। उसके कथनानुसार "उसकी दया समस्त वस्तुओं से उच्च है। मेरे अनुग्रह ने उन सबको घेर लिया है।" उन पवित्रता के जाज्वल्यमान रत्नों को आत्मप्रदेश से उत्पन्न किया गया है। मानव मन्दिर के भद्ररूप में उनको समस्त मनुष्यों के बीच प्रकट किया गया, जिससे वे संसार में अपरिवर्तनशील प्राणी के रहस्यों के ज्ञान का दान प्रदान करें और उसके अमर तत्व की श्रेष्ठताओं का वर्णन करें।

"ये पवित्र दर्पण, उस पुरातन प्रताप के देदीप्यमान वसंत, सब के सब इस पृथ्वी पर उसकी व्याख्या करने वाले हैं जो विश्व का केन्द्रीय चक्र, उसका सत्व और अन्तिम प्रयोजन है। उससे ही उसका ज्ञान और शक्ति प्रकट होते हैं और उसी से ही वे अपनी प्रभुसत्ता प्राप्त कर सकते हैं। उनकी आकृति की सुन्दरता उसकी प्रतिमूर्ति का प्रतिबिम्ब मात्र होती है। वे दिव्य ज्ञान के खजाने होते हैं और स्वर्गीय प्रतिमा के आगार

होते हैं। उनके द्वारा ही उसकी असीम शोभा का प्रसार होता है। उनके द्वारा ही वह ज्योति प्रकट होती है जो कभी मंद नहीं पड़ती। ये पवित्रता के मंडप, वे मूल दर्पण जो उसे न मुरझाने वाले प्रताप की ज्योति को प्रतिबिम्बित करते हैं, वे केवल उसी के आकृति रूप होते हैं जो अदृश्यों से भी अदृश्य है। इन दिव्य गुण सम्पन्न रत्नों के दिव्य ज्ञान के द्वारा ईश्वर के समस्त नाम और गुण, जैसे ज्ञान, शक्ति, प्रभुसत्ता और अधिराज्य, दया, बुद्धि विषय, यश, उदारता और अनुग्रह प्रकट होते हैं। ईश्वर के ये गुण न तो कभी किन्हीं विशेष ईशदूतों को दिये होते हैं और न अन्य ही उनसे वंचित होते हैं। न ही ईश्वर के समस्त पैगम्बर उसके कृपापात्र, इसके पवित्र और चुने हुए दूत, बिना किसी अपवाद के उनके नामों को धारण करने वाले और उसके गुणों के मूर्त्तरूप होते हैं। उनमें केवल दिव्य ज्ञान की तीव्रता और अपनी ज्योति की तुलनात्मक शक्ति की विभिन्नता होती है। जिस प्रकार उसने प्रकट किया है "कुछ प्रवर्त्तकों को हमने दूसरों से श्रेष्ठ बनाया है।"

"इसलिए यह स्पष्ट और सिद्ध हो गया कि इन पैगम्बरों और ईश्वर के चुने हुए लोगों के शरीरों के भीतर उसकी ज्योति के असीम नाम और उच्च गुण प्रतिबिम्बित हुए हैं, चाहे इन गुणों में से कुछ की ज्योति इन देदीप्यमान मन्दिरों से मानव दृष्टि के सामने वाह्यरूप में प्रकट न हो। यदि ईश्वर के कतिपय गुण वाह्य रूप में इन त्याग के तत्वों के द्वारा प्रकट नहीं किये गये तो इसका यह तात्पर्य नहीं कि वे ईश्वरीय गुण उनमें नहीं थे। वे उसके पवित्र नामों के खजाने और ईश्वर के गुणों के ज्योतिर्मय वसन्त थे। इसलिये ये प्रकाशमान आत्मायें, ये सौन्दर्यमयी आकृतियां, प्रत्येक ईश्वर के समस्त गुण जैसे

प्रभु-सत्ता, अधिराज्य से उसी प्रकार विभूषित होते हैं, चाहे बाह्य रूप में वे पार्थिव श्रेष्ठता से रहित प्रतीत हों।"

"ईश्वर के समस्त संदेशवाहक एक ही तत्व के होते हैं। उनकी एकता पूर्ण है। सृष्टिकर्त्ता ईश्वर कहता है कि मेरे संदेशवाहकों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। उन सब का एक ही प्रयोजन है उनका एक ही रहस्य है। एक से दूसरे को अधिक आदर देना, कुछ को शेष से अधिक ऊंचा समझना बिलकुल मना है। प्रत्येक सच्चे संदेशवाहक ने अपने संदेश को मूल रूप में वही माना है जो उसके पूर्ववर्ती संदेशवाहक का था। यदि कोई मनुष्य इस सत्य को समझने में समर्थ नहीं होता और उसके परिणामस्वरूप मिथ्या और भद्दी भाषा का प्रयोग करता है तो कोई भी मनुष्य जिसकी दृष्टि तेज है और जिसकी मेधाशक्ति प्रकाशमान है वह ऐसे वार्तालाप में अपने विश्वास को नहीं डिगने देगा।"

"तो भी, इस संसार में ईश्वर के संदेशवाहकों के दिव्य ज्ञान के परिणाम में भिन्नता होनी चाहिये। उनमें से प्रत्येक एक पृथक विशेष संदेशवाहक रहता है और विशेष कार्यों के द्वारा अपने को प्रकट करने के लिये उसे नियत किया गया है। इसी कारण से उनकी महानता में भिन्नता प्रतीत होती है। उसका दिव्य ज्ञान चन्द्रमा की रोशनी के समान है जो अपनी ज्योति पृथ्वी पर विकीर्ण करता है। यद्यपि वह सदैव प्रकट होता है तो भी वह प्रतिदिन एक नये परिमाण में अपनी चमक प्रकट करता है, तो भी उसकी अन्तर्निहित ज्योति कभी कम नहीं, और न उसका प्रकाश ही समाप्त होता है।"

"अतः यह स्पष्ट और सिद्ध है कि उनकी ज्योति की तीव्रता का वाह्य अन्तर उनकी स्वयं की ज्योति में निहित नहीं है

किन्तु इस सदैव परिवर्तनशील संसार की बदलती हुई ग्राह्य-शक्ति के कारण है। प्रत्येक संदेशवाहक को, जिसको सर्व-शक्तिमान और अनुपम सृष्टिकर्त्ता ने पृथ्वी के मनुष्यों के बीच भेजा है एक विशेष संदेश सुपुर्द किया था और उसको इस ढंग से कार्य करने की आज्ञा प्रदान की गई थी कि वह अपने युग की, जिसमें वह पैदा हुआ है, आवश्यकताओं को पूरी करे। मनुष्य के बीच अपने संदेशवाहकों को भेजने के लिये ईश्वर का दुहरा प्रयोजन है—प्रथम उद्देश्य मानव-पुत्रों को अज्ञान रूपी अंधकार से मुक्त करना और सच्ची मेधाशक्ति की ओर उनका मार्ग-दर्शन करना है, दूसरा उद्देश्य मानव जाति की शान्ति और स्थिरता को दृढ़निश्चयी बनाना और उनको वे समस्त साधन प्रदान करना है जिससे वह स्थापित की ज़ा सके।"

"ईश्वर के संदेशवाहकों को चिकित्सकों के समान समझा जाना चाहिए जिनका कार्य संसार और उसके लोगों की भलाई करना है ताकि वे एकता की भावना के द्वारा विभक्त मानवता की बीमारी को हटा सकें। उनके शब्दों पर आपत्ति उठाने और उनके चरित्र का तिरस्कार करने का अधिकार किसी को नहीं दिया गया। क्योंकि वे ही ऐसे लोग हैं जो यह दावा कर सकें कि उन्होंने रोगी को समझ लिया है और उसके रोग की ठीक तरह से जांच कर ली है। कोई भी मनुष्य चाहे उसकी निरी-क्षण शक्ति कितनी ही तेज हो तो भी वह उस ऊंचाई तक पहुँ-चने की आशा नहीं कर सकता जो दिव्य चिकित्सक की मेधा-शक्ति ने प्राप्त कर ली है। तब यह कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं है कि जो औषधि वर्तमान काल में प्रस्तावित की गई है वह पूर्व काल में प्रस्तावित औषधि से भिन्न पाई जाती है यह अन्यथा कैसे हो सकता है जबकि रोगी को उसके रोग के प्रत्येक

दर्जे पर एक विशेष औषधि की आवश्यकता होती है ? उसी प्रकार ईश्वर के संदेशवाहकों ने प्रत्येक समय संसार को दिव्य ज्ञान रूपी सूर्य की देदीप्यमान ज्योति से प्रकाशित किया है। जिस युग में वे प्रकट हुए उस युग की परिस्थितियों के अनुसार ही, ईश्वर के प्रकाश को अंगीकार करने के लिए अवश्य ही लोगों को आवाहन किया गया है। इस प्रकार वे अज्ञानरूपी अंधकार को दूर करने में और संसार पर अपने ज्ञान की ज्योति डालने में समर्थ हुए हैं। इसलिए प्रत्येक बुद्धिमान मनुष्य की आंखें इन संदेशवाहकों के अन्तरमय तत्वों की ओर लगी होनी चाहिए, क्योंकि उनका एक ही प्रयोजन, भलों को रास्ता दिखाना और दुःखी जनों को शांति प्रदान करता है। ये समृद्धि और विजय के दिन नहीं होते हैं। समस्त मानव जाति अनेक प्रकार की बुराइयों के पंजे में फंसी हुई होती है। इसलिए उस आरोग्यदायक औषधि के द्वारा जो भूल न करने वाले चिकित्सक के सर्वशक्तिमान हाथ द्वारा तैयार की गई है उसके जीवन को बचाने की कोशिश करो।''

**हिन्दू-धर्म की अवतार के विषय में मान्यता—**

हिन्दू-धर्म ग्रन्थों पुराणों आदि में इस विश्व का भार तीन महान देवताओं के सुपुर्द किया गया है जिन्हें त्रिदेव (God Trinity) कहा गया है। ये तीनों निम्न नामों से प्रसिद्ध हैं—

१. भगवान ब्रह्मा

२. भगवान विष्णु

३. भगवान शंकर (शिव)

**ब्रह्मा**

भगवान ब्रह्मा इस पृथ्वी पर सृष्टि की रचना करते हैं वे सभी सृष्ट वस्तुओं तथा प्राणियों के रचयिता कहे जाते हैं। सभी मानव वंशों के वे आदि जनक हैं। सृष्टि का आरम्भ उन्होंने मानसी सृष्टि से किया। बाद में स्त्री और पुरुष के संयोग से मानवों की रचना का विधान किया गया। उनका यह कार्य एक कल्प तक चलता रहता है: तत्पश्चात् वे शयन करके समाधिस्थ हो जाते हैं उस समय इस पृथ्वी पर सिवाय जल के कुछ भी नहीं रहता। उसे महाप्रलय की निशा कहा जाता है। उनकी आयु भी निर्धारित है। एक सृष्टि-चक्र अथवा कल्प में एक हजार चतुर्युग तथा चौदह मनु व्यतीत होते हैं: एक मनु का एक मन्वन्तर होता है। इस समय वाराह-कल्प का सातवां वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है।

**विष्णु —**

भगवान विष्णु इस सृष्टि जगत के रक्षक, निर्देशक तथा पथ-प्रदर्शक कहे जाते हैं। अपने इन कार्यों को वे अप्रत्यक्ष रह कर ही नहीं करते। उन्हें संसार में मानवों का मार्गदर्शन करने अपना अंशावतार प्रकट करना आवश्यक होता है। वे उन मानवों के बीच अपने रूप भेजकर अपनी शिक्षायें देकर उनको उन शिक्षाओं पर चलने का आवाहन करते हैं। जो मार्ग वे बताते हैं उस पर वे स्वयं भी चलकर संसार के बीच एक आदर्श उपस्थित करते हैं। उनके कार्य और जीवन-पद्धति साधारण मानवों की भांति होती है। अत: विभिन्न प्रकार की कठिनाइयां उठाकर घोर से घोर कष्ट और व्यथायें सहकर भी वे अडिग रहते हुए विश्व का मार्गदर्शन करते हैं। यद्यपि उनमें

अलौकिक शक्ति होती है तथापि अत्यन्त संकट की घड़ी आने पर भी वे कदाचित ही उन शक्तियों का प्रयोग करते हैं। उन्हें समस्त ऋद्धि सिद्धियों का स्वामी भी बताया जाता है।

भगवान विष्णु के चार भुजायें बताई गई हैं। चारों भुजाओं में चार प्रतीक चिह्न यथा—शंख, चक्र, गदा और पद्म बताये गये हैं। इन चारों प्रतीकों से यही तात्पर्य है कि उनके चार मुख्य कार्य होते हैं। 'शंख, उद्घोष तथा आवाहन का प्रतीक है, इससे वे संसार के मानवों का आवाहन करके उन्हें वेदमार्ग पर चलने की शिक्षा देते हैं। चक्र; काल तथा धर्म का प्रतीक है। इससे यह तात्पर्य है कि वे काल के स्वामी हैं तथा संसार में उनका कालचक्र सदैव घूमता रहता है, जिसकी दिशा कभी अवनति तथा कभी प्रगति की ओर होती है। निरन्तर चलते रहना ही उसका धर्म है। इसी प्रकार संसार में काल की स्थिति के अनुसार धर्मचक्र का घूमना भी परम आवश्यक है। भगवान विष्णु इस सम्पूर्ण विश्व के एक-क्षत्र चक्रवर्ती विराट सम्राट भी हैं। संसार की समस्त प्रजाओं तथा इसके सभी राजा महाराजाओं के वे महाधिपति हैं। गदा, शक्ति तथा कठोरता की प्रतीक है। इससे तात्पर्य है कि उनमें संसार के समस्त दुष्ट प्राणियों को दण्ड देने की अद्भुत और महान् शक्ति है। वे उन दुष्ट पापियों का विनाश करके साधु अर्थात् धार्मिक जीवन व्यतीत करनेवाले सज्जनों का सदैव ही परित्राण करते हैं। वे दुष्कृत्यों का विविध और विशेष रूप से नाश करके विश्व में न्याय की स्थापना करते हैं। पद्म, शान्ति तथा सौन्दर्य का प्रतीक तथा लक्ष्मी का आसन है। अतः पृथ्वी पर शान्ति की स्थापना करना भी उनका एक महान् कार्य है इससे वे पृथ्वी को धनधान्य से पूर्ण करके एक

नये सौन्दय तथा संस्कृति से विभूषित करते हैं। वे परमयोगी तथा परम पुरुष कहे जाते हैं। माया अर्थात् प्रकृति के संयोग से वे अनेकानेक लीलाओं का विधान रचते हैं। संसार के समस्त योगियों, सन्तों तथा महात्माओं के वे सदैव ही आराध्य रहे हैं। उनका मात्र एक दर्शन पाने को ये सब सदैव ही लालायित रहते हैं। इतनी महानतम शक्तियों से सम्पन्न वह विराट पुरुष, इस पृथ्वी की डगमगाती नौका का तारणहार, पृथ्वीभर के चराचर जीवजगत् का परम आराध्य देवाधिदेव, जब मनुष्य रूप में पृथ्वी पर अवतरित होता है तो मूढ़ मनुष्य इसे मानुषी शरीर में देखकर भ्रमित हो उठते हैं। वे इसे जानने तथा समझने में शक्य नहीं हैं। ऐसे ही मनुष्यों के लिए भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है—

**अवजानति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।**
**परं भावमजानन्तो मम भूत महेश्वरम् ॥९॥११॥**

अर्थात्—ऐसा होने पर भी संपूर्ण भूतों के महान् ईश्वर रूप मेरे परमभाव को न जानने वाले मूढ़ लोग मनुष्य का शरीर धारण करने वाले मुझ परमात्मा को तुच्छ समझते हैं अर्थात् अपनी योगमाया से संसार के उद्धार के लिये मनुष्य रूप में विचरते हुए को साधारण मनुष्य मानते हैं।

## शङ्कर

भगवान शङ्कर को इस चराचर जगत का लय अर्थात् नाश करने वाला कहा गया है। सृष्टि के कल्याण के लिये उसका निरन्तर नाश होता रहना भी आवश्यक है इसीलिए उन्हें कल्याणकारी अर्थात् 'शिव' भी कहा गया है। वे विनाश के देवता हैं। प्रलयङ्कारी ताण्डव उनकी लीला है।

अपने इस कार्य के लिये उन्हें विश्व के मानवों के समक्ष प्रत्यक्ष होने की आवश्यकता नहीं रहती। अतः वे अज्ञात रहकर निरन्तर अपना कार्य करते रहते हैं। महाकाल की गति के अनुसार ऐसा होना परमावश्यक है। जिसका आरम्भ है उसका अन्त भी निश्चित है। इस संसार की प्रत्येक वस्तु अर्थात् चराचर जगत, सबकी आयु निश्चित है। अतः अन्त में उसका लय होना भी नितान्त आवश्यक है। यह महान् कार्य भगवान शङ्कर का कहा गया है। इसीलिए उनका वेष अशुचिकारक यथा चिता भस्म लपेटे तथा नागों से आवृत बताया गया है।

**हिन्दू-धर्म की मान्यता के अनुसार विष्णु के अवतार :—**

हिन्दू-धर्म में विष्णु के चौबीस अवतार माने गये हैं। किन्तु इनमें दस अवतार अधिक प्रसिद्ध हैं। 'दशावतार' नाम से मन्दिर तथा मूर्तियां भी प्राप्त होती हैं। इन अवतारों की मुख्य लीला स्थली—केवल भारतवर्ष ही रहा, यह सर्वथा भ्रान्त धारणा है। सृष्टि का मूल स्थान हिमालय नहीं सुमेरु है अतः पूर्ववर्ती प्रायः सभी अवतार सुमेरु की घाटी में हुए हैं। यहाँ अवतारों की संक्षिप्त चर्चा करते हुए स्थान आदि बताने का प्रयत्न किया जाता है। इसका आधार आचार्य चतुरसेन शास्त्री की तर्क सम्मत पुस्तक 'वयं रक्षामः' से लिया गया है।

(१) **मत्स्य अवतार**—भगवान विष्णु का यह अवतार जहां भी हुआ वहां जल-प्रलय हुई थी। किसी मन्वन्तर की जल-प्रलय के चिन्ह ईराक व ईरान में प्राप्त हुए हैं। डा० लियोनार्ड वूली नामक पुरातत्ववेता ने खुदाईयां कराकर सुमेरु की घाटी (दजला और फरात नदियों की) में रेत की तहें हटाने के पश्चात चार फीट चिकनी मिट्टी की तह प्राप्त की

थी। वैज्ञानिक खोजों के आधार पर यह चिकनी मिट्टी विशाल जल-प्लावन होने से उत्पन्न हुए मटमैले पानी की मिट्टी नीचे बैठने से बनी है। इस मिट्टी के हटाने से इसके नीचे इस पृथ्वी की प्राचीनतम सभ्यताओं के अवशेष प्राप्त हुए हैं। अत: इससे यह सिद्ध होता है कि भगवान विष्णु का मत्स्य-अवतार जो मनुष्य के रूप में ही रहा होगा इसी प्रदेश में हुआ था।

(२) **कच्छ अवतार**—विष्णु का प्रसिद्ध कच्छ-अवतार भी आरम्भिक काल की घटना है अत: कच्छप या कश्यप का यह प्रसिद्ध अवतार भी भारत वर्ष में न होकर सम्भवत: काश्यप सागर (CASPEAN-SEA) के तट पर हुआ है।

(३) **वाराह अवतार**—इसी प्रकार भगवान विष्णु का प्रसिद्ध वाराह अवतार भी दैत्यों के देश बाबिल या बैबीलोनिया में हुआ है। भ० वाराह यज्ञ-पुरुष कहे जाते हैं। उन्होंने यज्ञों की स्थापना की और पापाचार रूपी रसातल में जाने वाली पृथ्वी का उद्धार किया। दैत्यों के प्रदेश में दैत्य सम्राट हिरण्याक्ष का वध किया। अलंकारिक भाषा में इनको वाराह कहे जाने से भ्रान्ति के कारण पशु शरीर धारी माना जाता है जो सही नहीं है।

(४) **नृसिंह-अवतार**—भगवान विष्णु ने सिंह जैसा बल प्राप्त करके अकेले ही बिना किसी शस्त्र के दैत्यों के प्रतापी और महाबली शासक हिरण्य-कश्यप का वध कर दिया। अत: उनका यह अवतार भी दैत्यों के प्रदेश में हुआ है।

(५) **वामन-अवतार**—दैत्यों के प्रदेश के ही प्रबल,

प्रतापी, सम्राट बलि को वचन बद्ध करके भगवान वामन ने परास्त कर दिया ओर उनकी समस्त भूमि दान में लेकर उनको नाग-देश 'पाताल' अर्थात सुमेरु शिखरों से घिरे कास्पियन सागर तटवर्ती प्रदेश का राज्य दे दिया।

(६) **परशुराम-अवतार**—सुमेरु-शिखर के एक स्थान में वसने वाले महर्षि भृगु के वंशज शुक्राचार्य्य, जो पहले दैत्यों के याजक रहे, पुनः दैत्यराज बलि द्वारा समस्त भूमि दान कर देने पर दानवों के देश में जाकर दानवराज वृषपर्वा के याजक बने। उन्हीं भृगु के दूसरे पुत्र च्यवन के पौत्र ऋचीक भार्गव जल मार्ग से चलकर नर्मदा नदी के तट पर भृगुकच्छ (भड़ौंच) पहुंचे। वे अपने साथ दानव प्रदेश से एक सहस्र श्यामकर्ण अश्व लाये थे। जिन्हें देकर उन्होंने कान्यकुब्ज प्रदेश के महाराजा गाधि की कन्या से विवाह किया था। इन्हीं ऋचीक भार्गव के पौत्र थे भ० परशुराम, जिन्होंने अत्याचारी राजाओं सहस्राजुन आदि का वध किया। उन्होंने सत्ययुग के अन्त में अवतार लिया था।

(७) **राम-अवतार**—इक्ष्वाकु के वंशजों ने अयोध्या पर राज्य किया उन्हीं के वंश में दाशरथि राम ने त्रेतायुग के संध्यांशकाल में जन्म लेकर लंका के राक्षस राजा रावण को मारकर दक्षिणी भारत को संकट मुक्त किया।

(८) **कृष्ण-अवतार**—यादव क्षत्रिय कुल में राजा वसुदेव के घर जन्म लेकर मथुरा के राजा कंस का वध किया। अत्याचारी शासकों से पृथ्वी को मुक्त करने को महाभारत युद्ध के प्रणेता बने। उन्होंने पश्चिमी देशों में असीरिया के असुर सम्राट नरकासुर, यमलोक के अधिपति, वरुण लोक के

अधिपति, दैत्य प्रदेश के सम्राट वाणासुर तथा ईरान में महेन्द्रायण (माजिन्दरान) प्रदेश के राजा महेन्द्र को परास्त करने के लिए अपनी राजधानी भारतवर्ष के मध्य में न बनाकर एकदम पश्चिम में सौराष्ट्र की 'द्वारिकापुरी' में बनाई जिसकी केवल राजधानी ही शेष रह गई है, सम्पूर्ण भूमि समुद्र में डूब गई। इनका अवतार द्वापर-युग के संध्यांश काल में इस समय से लगभग ४९५८ वर्ष पूर्व हुआ है।

(९) **बुद्ध-अवतार**—हिमालय की घाटी अर्थात नैपाल की तराई में कपिलवस्तु नामक नगरी के राजा शुद्धोधन के गृह में भगवान गौतम बुद्ध का जन्म हुआ। जिन्होंने पृथ्वी के राजाओं को अहिंसा और प्रेम का मार्ग बताया। इनका जन्म इसी कलियुग के मध्यकाल में अब से लगभग २५४२ वर्ष पूर्व हुआ है।

(१०) **कल्कि अवतार**—भगवान विष्णु का दसवां अवतार 'कल्कि' नाम से प्रसिद्ध है जिसे कलियुग के अन्त में अवतरित होना बताया गया है। यह भावी अवतार हैं जो कलियुग का अन्त करके पृथ्वी पर नवीन युग की स्थापना करेंगे। हिन्दू धर्मावलम्बियों की धारणा के अनुसार कल्कि अवतार अभी तक प्रकट नहीं हुआ है। 'कल्कि-विष्णुयशा' नाम केवल महर्षि व्यास रचित ग्रंथों में ही प्राप्त होता है। 'कल्कि' से तात्पर्य "कल्कि : कल्क विनाशकै" अर्थात वही कलियुग का पूर्णतः विनाश करने वाला.. अर्थात् इस युग का अन्तिम अवतार होना चाहिए।

**ईश्वरीय अवतार की पहचान :**

श्रीमद्भागवत पुराण की टीकाकारों द्वारा गलत व्याख्या

के कारण यह सर्वथा भ्रान्त धारणा बनी हुई है कि कलियुग अभी समाप्त नहीं हुआ अत: अभी अवतार के आने का समय ही नहीं आया। इस विषय की चर्चा हम आगे करेंगे। इस समय अधिकांश लोगों की यह धारणा बनती जा रही है कि यह अवतार के आने का उपयुक्त समय है और उसे अब प्रकट हो जाना चाहिये। बहुत से लोग संसार में चल रहे महान परिवर्तन को देखकर भी यह सोचने को बाध्य हो उठे हैं कि अवश्य ही इस पृथ्वी पर कहीं न कहीं अवतार आ चुका है। इसी परिवर्तन को लक्ष्य कर बहुत से ढोंगी लोग धन और भारी सम्मान के लालच के कारण अपने को अवतार के रूप में प्रसिद्ध करते रहे हैं। ऐसे समय में विवेकशील व्यक्तियों का काम है कि लोगों को भटकने से रोकें। ईश्वरीय-अवतार के कार्य इतने महान होते हैं कि उन्हें किसी भी प्रकार के प्रलोभनों या चमत्कार दिखाकर लोगों को आकर्षित करने की आवश्यकता नहीं होती। इन नकली अवतारों की बाढ़ का आना ही यह सिद्ध करता है कि अवश्य ही पृथ्वी पर कहीं न कहीं वह सच्चा ईश्वरीय-अवतार प्रकट हो चुका है। हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि ऐसे समय लोगों को भटकने से रोकने के लिये पिछले ईश्वरीय अवतारों के चरित्र और कार्यों के आधार पर कुछ ऐसी पहचानें लिखें जिनके आधार पर हम सत्यासत्य का निर्णय करके उस सच्चे ईश्वरीय अवतार को पहचान सकें।

ईश्वरीय अवतार को पहचानने के लिये बड़ा पवित्र हृदय और निर्मल बुद्धि चाहिए। तुलसीदास जी के मतानुसार अवतार, उसके संत तथा उसका मार्ग ईश्वर की महान

कृपा से ही प्राप्त होते हैं ।

बिनु सत्संग विवेक न होई ।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ।।
सब कर फल हरि-भगति सुहाई ।
सो बिनु सन्त न काहू पाई ।।
अस बिचार जो करि सत्संगा ।
राम भगति तेहि सुलभ बिहगा ।।
अति हरि कृपा जासु पर होई ।
पाइ देहुं यहि मारग सोई ।।

हम अपनी सीमित बुद्धि से कुछ पहचानें नीचे दे रहे हैं । पाठकों से हमारी प्रार्थना है कि वे इन पर गहराई से विचार करें और इसी आधार पर सत्यासत्य का निर्णय करें ।

(१) **प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित वंश :** यह देखा गया है कि ईश्वरीय अवतार सदैव एक प्रसिद्ध तथा प्रतिष्ठित वंश, जो अपनी पवित्रता, धार्मिकता, भक्ति, सदाचरण तथा दान-शीलता आदि के लिये विख्यात होता है, उसमें ही जन्म लेता है ।

(२) **दिव्य सचेतक**—ईश्वरीय अवतार के आने से पूर्व उसी देश में एक महान सन्त आकर स्पष्ट ही उसके आने की घोषणा करता है तथा लोगों को उसके स्वागत के लिए तैयार करता है ।

(३) **सहयोगी अवतार**—यह देखा जाता है कि ईश्वरीय अवतार का एक प्रमुख सहयोगी होता है जो उसके पूर्व या

बाद में जन्म लेता है और वही कार्य करता है। दोनों में बड़ा गहरा आध्यात्मिक सम्बन्ध होता है। जैसे नर-नारायण, राम-लक्ष्मण, कृष्ण-बलदेव, क्राइस्ट तथा जौन बैप्टिस्ट, मुहम्मद व अली। इसीलिए कभी कभी हम उन्हें जोड़े का ईश्वरीय अवतार (Twin-Manifestation) कहते हैं।

(४) **प्रमुख अनुयायी**—वह अपने आने के पश्चात कुछ ऐसे चुने हुए महान अनुयायी उत्पन्न करता है जो सब उस पर अगाध श्रद्धा तथा भक्ति रखते हैं। वे अपने जीवन का उद्देश्य उसके द्वारा दिये गये सत्य-धर्म का प्रचार तथा प्रसार ही समझते हैं तथा उसके धर्म के लिये अपने प्राणों की बाजी भी लगा देते हैं।

(५) **पुरोहित वर्ग का विरोध** : जिस देश में वह जन्म लेता है उस देश का अधिकांश पुरोहित-समाज उसके विचारों तथा शिक्षाओं को समझने में असमर्थ रहता है। तत्कालीन धार्मिक मान्यताओं से उसकी शिक्षायें भिन्न पाकर वह समाज उसका जबरदस्त विरोध करता है। उसे तथा उसके धर्मानुयायियों को मिटाने के लिए वह शासन पर भी दबाव डालता है। पर वे सब उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ पाते और इस प्रकाश को बुझाने में असमर्थ रहते हैं।

(६) **शासन की शत्रुता**—प्रायः यह पाया जाता है कि ईश्वरीय अवतार का शत्रु उस देश का प्रधान शासक या सम्राट भी होता है। वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति उस ईश्वरीय अवतार तथा उसके अनुयायियों को मिटाने में लगाने पर भा उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ पाता। उल्टे इस विरोध और अत्याचार से उसके धर्म की शक्ति बढ़ती है।

(७) **दिव्य ज्ञान सम्पन्न**—ईश्वरीय अवातर सदव दिव्य-ज्ञान सम्पन्न होता है। उसका ज्ञान अर्जित नहीं होता। उसे किसी विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होती। उसे तो मात्र प्रारम्भिक शिक्षा प्रथा का निर्वाह करने हेतु दी जाती है। वस्तुत: वही स्वयं समस्त ज्ञान का श्रोतस्थल होता है।

(८) **नवीन चेतना का प्रसार**—ईश्वरीय-अवतार के आगमन के पश्चात सम्पूर्ण पृथ्वी पर एक नई चेतना फैल जाती है। संसार के निवासी उसके आगमन के विषय में अज्ञान रहकर भी एक सर्वथा नवीन चेतना का अनुभव करके एक नई सभ्यता तथा संस्कृति को अपनाते चले जाते हैं। भिन्न भिन्न प्रकार के वैज्ञानिक आविष्कार, आवागमन के आश्चर्यकारी साधन, भौतिक सुखों की अनेकानेक वस्तुयें इतनी भारी मात्रा में निकल आती हैं जितनी उससे पूर्व कभी नहीं थीं। सूरदास जी ने इसीलिए कहा है—

स्वर्णफूल पृथ्वी पर फूलै पुनि जग दशा लहै।
'सूरदास' यह 'हरि की लीला' टारै नाहिं टरै॥

(९) **सार्वजनिक-घोषणा**—वह अपने प्राकट्य के सम्बन्ध में सार्वजनिक घोषणा करता है। इस पृथ्वी के सम्राटों, धर्माचार्यों तथा अन्य नेताओं को स्पष्ट रूप से बताता है कि मैं ही इस युग के लिए ईश्वर के द्वारा भेजा गया ईश्वरीय अवतार हूं।

(१०) **धार्मिक पुस्तक**—जिस युग में भी वह प्रकट होता है उस युग के मनुष्यों के लिए एक नवीन आचार संहिता

(Book of Laws) देना आवश्यक है अतः वह एक 'धर्म पुस्तक' प्रकट करता है। भगवान कृष्ण की गीता, ईसामसीह की बाइबिल, मुहम्मद की कुरान जैसी कोई एक पुस्तक, जिसमें भावी मानव-समाज के लिये शिक्षायें तथा आज्ञायें हों, देना ईश्वरीय अवतार का कार्य होता है।

(११) **विशेष संदेश**—प्रत्येक युग के ईश्वरीय अवतार को एक मुख्य कार्य सौंपा जाता है और उसकी समस्त शिक्षायें उसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु होती हैं। इस युग की प्रमुख समस्या इस पृथ्वी पर 'अखण्ड भौगोलिक एकता' की स्थापना है। अतः इस युग के ईश्वरीय अवतार का मुख्य संदेश एकता-स्थापन के लिए ही होगा तथा उसकी समस्त शिक्षायें इसी की प्राप्ति के लिए होंगी विश्व की तत्कालीन परिस्थितियां भी इसी उद्देश्य की प्राप्ति के अनुरूप हो जाती हैं जिनसे वाध्य होकर मनुष्य उसकी शिक्षाओं पर चलने को विवश हो जाता है।

(१२) **पिछले ईश्वरावतारों का समर्थन**—वह ईश्वरीय अवतार अपने से पूर्व प्रकट हुए सभी ईश्वरावतारों का समर्थन करता है तथा अपने धर्म को भी उसी प्राचीन धर्म की परम्परा में वताता है जो इस पृथ्वी पर पहले से ही स्थापित है, किन्तु भुला दिया गया है। वह उन सभी ईश्वरावतारों में एकता बताता है।

(१३) **स्वयं की शिक्षाओं पर चलना**—प्रत्येक युग का ईश्वरीय अवतार जिन शिक्षाओं को देता है उन पर वह स्वयं भी चलकर अपने अनुयायियों के लिए एक आदर्श उपस्थित

करता है। उन शिक्षाओं पर चलने में उसके सम्मुख कितनी ही बाधायें क्यों न आयें वह स्वयं उन पर चलकर बताता है। ऐसा करने में वह समकालीन पुरोहितवर्ग का भारी विरोध सहन करता है।

(१४) **भौतिक चमत्कारों से रहित**—ईश्वरीय अवतार को किन्हीं भौतिक चमत्कारों का प्रदर्शन करके लोगों को आकर्षित करने की आवश्यकता नहीं होती। उसका स्वयं का दिव्य आचरण, उसका अगाध ज्ञान, उसकी तपश्चर्या, कठिन साधना तथा उसकी महान इच्छा शक्ति का प्रभाव ही इतना व्यापक तथा दूरगामी होता है कि उसे इन क्षुद्र चमत्कार प्रदर्शनों की आवश्यकता ही नहीं होती। उसका यह महान आध्यात्मिक प्रभाव ही लोगों को आकर्षित करने हेतु पर्याप्त होता है।

(१५) **विश्व की समस्याओं का निदान**—एक विशेष बात यह है कि ईश्वरीय अवतार केवल आध्यात्मिक समस्याओं का ही निदान नहीं देता किन्तु विश्व की समस्त समस्याओं का निदान भी उसकी शिक्षाओं में होता है। चाहे वे समस्यायें निशस्त्रीकरण द्वारा विश्व में शान्ति-स्थापन की हों, आर्थिक हों अथवा सामाजिक।

(१६) **जीवन की सामान्य धारा के अनुरूप शिक्षायें**—ईश्वरीय अवतार की शिक्षायें जीवन की सामान्य गति के अनुरूप होती हैं। वे ऐसी नहीं होती जो जीवन की गति में बाधायें उत्पन्न करें। उसके उपदेशों तथा शिक्षाओं में ऐसी जटिल प्रक्रियायें या विधि-विधान नहीं होते जो सामान्य जन के लिए व्यवहारिक न हो इसीलिए वह तमाम प्राचीन रूढ़ियों को तोड़कर सहज स्वाभाविक आचरण संहिता देता है।

**(१७) आगामी विश्व के लिए भविष्य-वाणियां**—वह भावी विश्व के लिये प्रभावशाली भविष्यवाणियां करता है। वह त्रिकालज्ञ होता है तथा अपनी महान योग शक्ति से भावी विश्व की दशा को जानकर उसी के अनुरूप अपनी शिक्षायें देता है। इसीलिए उसकी अनेकों शिक्षाओं का मन्तव्य समझने में हम अपने को असमर्थ पाते हैं।

(१८) **उसके विषय में भविष्यवाणियां**—ईश्वरीय अवतार के आगमन के विषय में पिछले ईश्वरीय अवतार, सन्त, महात्मा, योगी तथा प्रमुख भक्त भविष्यवाणियां करते हैं। वे उसके आगमन तथा प्राकट्य के समय तथा स्थान का परिचय देते हैं। यह एक ऐसा कार्य है जो नकली ईश्वरावतारों के लिए बिलकुल असम्भव है क्योंकि ये भविष्यवाणियां इतनी गूढ़ होती हैं कि उनका अर्थ समझना बहुत ही कठिन होता है। उस ईश्वरीय अवतार के प्राकट्य के बाद ही उन भविष्य-वाणियों का अर्थ स्पष्ट हो पाता है, तब उसकी पहचान हो पाती है।

(१९) **आगामी ईश्वरावतार की भविष्यवाणी**—प्रत्येक ईश्वरीय अवतार अपने पश्चात प्रकट होने वाले ईश्वरीय अवतार के सम्बन्ध में स्पष्ट घोषणा करता है कि आगामी ईश्वरीय अवतार इतने समय पश्चात आयेगा, इससे पूर्व नहीं लगभग १००० वर्ष का अन्तराल ईश्वरीय अवतारों के मध्य में पाया जाता है।

(२०) **विशेष सितारों का निकलना**—परमात्मा की ओर से भी आकाश में ऐसे अपूर्व चिन्ह प्रकट किये जाते हैं, जिनसे

स्पष्ट पता लगता है कि इस समय कहीं न कहीं किसी दिव्य पुरुष का जन्म हुआ अथवा पृथ्वी पर कोई विशेष घटना घटी है।

**ईश्वरीय अवतार की खोज :**

इस पुस्तिका के पिछले पृष्ठों में हमने उन परिस्थितियों का वर्णन किया है जिनके कारण हम यह अच्छी तरह जान सकते हैं कि ईश्वरीय अवतार के प्राकट्य का यह सबसे उपयुक्त समय है, बल्कि संसार की दशा कुछ ऐसा मोड़ ले रही है जिससे स्पष्ट ही ऐसा प्रतीत होता है कि गति इस समय पतन की ओर न होकर उत्थान की ओर हो गई है। फिर भी यह संक्रान्ति-काल है जब पाप और पुण्य दोनों ही अपनी पूरी शक्ति से विश्व में प्रभावी हैं। इसमें पुण्य और धर्म की विजय हो रही है और पाप और अधर्म का शनैः शनैः लोप होता जा रहा है। इन चिन्हों के स्पष्ट होने पर भी बहुत से लोगों ने ईश्वरीय अवतार के प्राकट्य का प्रश्न कलियुग की समाप्ति से जोड़ा है। अधिकांश लोगों का यही कहना है कि अभी तो यह कलियुग का प्रथम चरण ही चल रहा है ? उसकी समाप्ति कहां हुई ? उनके इस कथन का आधार यह है कि 'कल्कि अवतार' का प्राकट्य कलियुग के अन्तिम काल में होना चाहिये। इस प्रश्न पर विचार करनें से पूर्व हम पहले युगों की अवधि सम्बन्धी प्रचलित मान्यता पर विचार करके देखें कि उसकी तथा कलियुग की ठीक-ठीक अवधि क्या है ?

**युगों की अवधि :**

युगों की अवधि बताने वाले बहुत से श्लोक शास्त्रों में

दिये गये हैं स्थानाभाव से हम उनमें से एक दो की ही चर्चा करेंगे। इस सम्बन्ध में महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास द्वारा लिखित 'कल्कि-पुराण' का ही श्लोक देखिये—

द्वादशाब्द सहस्रेण देवनांञ्च चतुर्युगम् ।
चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं सहस्र गणितम मतम्
११३ । ५ । १२ ॥

अर्थ—बारह हज़ार वर्षों का देवताओं का तथा चतुर्युग होता है इसका विभाजन गणित के मत के अनुसार चार, तीन, दो और एक सहस्र वर्षों के अनुपात से है।

उपरोक्त श्लोक में स्पष्ट ही 'गणितम् मतम्' दिया हुआ है यहां व्यास जी ने टीकाकारों को सावधान करने हेतु यह संकेत दिया है कि इस श्लोक का अर्थ गणित के नियम के अनुसार लगाओ। संस्कृत भाषा के विद्वान भली प्रकार जानते हैं कि गणित का एक प्रचलित सर्वमान्य नियम है, जिसे कहते हैं—

अंकानां वामतो गतिः। संख्यानां दक्षिणो गतिः ॥

इसका अर्थ होता है कि श्लोक में जब अंक लिखे जाते हैं तो उनकी गति वाम अर्थात उल्टी होती है और जब संख्या लिखी जाती है तो उसकी गति सीधी होती है। पता नहीं टीकाकारों ने इन श्लोकों की टीका लिखते समय इस नियम का पालन क्यों नहीं किया ? इस नियम के अनुसार १२,००० वर्षों का विभाजन ४, ३, २ व १ के क्रम से न करके १, २, ३ व ४ के क्रम से करेंगे।

चतुर्युग का विभाजन

| नाम युग | संध्या | अवधि | संध्यांश प्रतीक्ष्य काल | = पूर्ण अवधि |
|---|---|---|---|---|
| सत्ययुग (कृतयुग) | १००+ | १,००० + | १०० | = १२०० |
| त्रेतायुग | २०० + | २,००० + | २०० | = २४०० |
| द्वापरयुग | ३०० + | ३,००० + | ३०० | = ३६०० |
| कलियुग | ४०० + | ४,००० + | ४०० | = ४८०० |
| चतुर्युग का काल | | | योग | = १२,००० |

इससे अगला श्लोक यह है—

तावच्छतानि चत्वारि त्रीणि द्वै चैकमेव हि।
सन्ध्याक्रमेण तेषान्तु सन्ध्यांशोऽपि तथा विध : ॥ १३ ॥

अर्थ—इन चारों युगों की पूर्व सन्ध्या उसी क्रम के अनुसार १ सौ, २ सौ, ३ सौ व ४ सौ वर्षों के बराबर होती है और इसी प्रकार संध्यांश भी होता है। मनुस्मृति के टीकाकार आचार्य्य कुल्लूक भट्ट ने अपनी टीका में स्पष्ट लिखा है कि १२,००० वर्ष जो मनुष्यों के हैं उन्हीं का एक देवयुग होता है।

"एतस्य श्लोक स्यादौ यदे तन्मानुषम् चतुर्युगं।
परिगणितम एतद्वेवानां युग मुयन्चते"

अर्थात् उपरोक्त १२,००० वर्ष मनुष्यों के हैं इन्हीं के

बराबर देवताओं का युग होता है।

टीकाकारों ने "अंकानां वामतो गतिः" के नियम का पालन न करके इन १२,००० वर्षों का विभाजन १, २, ३ व ४ के क्रम के बजाय ४, ३, २ व १ के क्रम से कर दिया। इस हिसाब से कलियुग की आयु सत्ययुग की और सत्ययुग की आयु कलियुग की हो गई। कलियुग ४८०० वर्ष के स्थान पर १२०० वर्ष का बन गया। जब टीकाकार इस १२०० वर्ष का हिसाब न बैठा पाये तो उन्होंने एक और भूल कर दी। वह यह कि वे इन १२०० वर्षों को दिव्य वर्ष के स्थान पर देव-वर्ष समझकर १२००×३६०=४,३२,००० वर्ष का कलियुग बना बैठे। सूर्य सिद्धान्त के अनुसार एक दिव्य वर्ष सूर्य की उत्तरायण तथा दक्षिणायन गति के, अर्थात केवल ३६० दिनों के बराबर होता है।

## कलियुग की अवधि

(क) कलियुग की अवधि स्वतंत्र रूप से कई ग्रंथों में दी हुई है। इस सम्बन्ध में सबसे पहले श्रीमद्भागवत् का एक श्लोक प्रस्तुत किया जाता है—

दिव्याब्दानां सहस्रान्ते चतुर्थे तु पुनः कृतम्।
भविष्यति यदा नृणां मम आत्म प्रकाशकम्
॥ १२। २। ३४॥

अर्थ—दिव्य ४,००० वर्षों के अन्त में पुनः कृतयुग आयेगा, जो मनुष्यों के मन और आत्मा में प्रकाश उत्पन्न करेगा। यहां स्पष्ट ही "दिव्याब्दानां सहस्रान्ते चतुर्थे" लिखा है

जिसका अर्थ केवल यही हो सकता है कि दिव्य चार सहस्त्र वर्षों के अन्त में जो कलियुग की अवधि के वर्ष हैं पुनः कृतयुग आयेगा।

(ख) एक अन्य स्पष्ट प्रमाण विष्णुपुराण का है इसका अर्थ भी टीकाकारों ने अपनी धारणा के हिसाब से बदलने का प्रयत्न किया पर ऐसा करके वे चक्कर में पड़कर १२०० वर्ष का ही सत्ययुग बता गये। देखिये विष्णुपुराण चतुर्थ अंश का २४ वां अध्याय।

त्रीणि लक्षाणि वर्षाणां द्विज मानुष्य संख्यया।
षष्टिश्चैव सहस्राणि भविष्यत्येष वै कलिः॥ ११४।
शतानि तानि दिव्यानां सप्त (पञ्च) च संखयया।
निश्शेषेण गते तस्मिन् भविष्यति पुनः कृतम्॥ ११५॥

अर्थ—हे द्विज। मनुष्य संख्या से जो तीन लाख साठ हजार वर्ष हैं उनको ७५ से निश्शेष करने (अर्थात भाग देने पर) जो आये उतने का कलियुग होगा और उसके १०० दिव्य वर्ष व्यतीत होने पर पुनः कृतयुग (सत्ययुग) आयेगा। ३,६०,००० को ७५ संख्या से भाग देने पर ८४०० आयेगा। उसके १०० दिव्य वर्ष पश्चात् सत्ययुग आयेगा। इस श्लोक को इस तरह पढ़िये इससे अर्थ स्पष्ट हो जायेगा।

"द्विज! त्रीणि लक्षाणि वर्षाणां च षष्टि सहस्राणि मानुष्य संख्यया तानि सप्त पञ्च च संख्यया निश्शेषेण, भविष्यत्येष वै कलिः शतानि तानि दिव्यानां गते तस्मिन भविष्यति पुनः कृतम्।"

गीताप्रेस गोरखपुर की श्री मुनिलाल गुप्त द्वारा की गई टीका में इन श्लोकों का अर्थ इस प्रकार लिखा है :—

हे द्विज ! मानवी वर्ष गणना के अनुसार कलियुग तीन लाख साठ हजार वर्ष रहेगा ॥ ११४ ॥ इसके पश्चात् १२०० दिव्य वर्ष बीतने तक कृतयुग रहेगा ॥ ११५ ॥

इस प्रकार अपनी प्रचलित धारणाओं के आधार पर टीका करने में एक गलती टीकाकार से फिर हो गई कि वे १२०० दिव्य वर्षों का सत्ययुग लिख गये । त्रिकालज्ञ महर्षि व्यास जी जानते थे कि आगे आने वाले टीकाकार श्लोकों का अर्थ बदलकर कलियुग की आयु ४८०० वर्षों के स्थान पर १२०० वर्षों को लिखेंगे और अपनी इस धारणा के निर्वाह हेतु श्लोकों तक को जो उनकी मान्यताओं के विरुद्ध होंगे, प्रक्षिप्त करने से नहीं चूकेंगे, जैसा अन्य ग्रंथों महाभारत तथा हरिवंश पुराण में किया गया है अत: उनको कलियुग और सत्ययुग की अवधि इस प्रकार लिखनी पड़ी । विद्वान पाठक इसकी परीक्षा करके देख लें कि इस श्लोक का किसी भी प्रकार से अर्थ करें कलियुग ४८०० वर्ष का और सत्ययुग ९००० वर्ष का ही निकलेगा । यदि अर्थ बदलने की चेष्टा की गई तो श्लोक स्वयं मार्ग बन्द कर देगा ।

(ग) कलियुग की अवधि का सबसे प्रबल प्रमाण हमें भगवान कृष्ण के राजपुरोहित महर्षि गर्गाचार्य जी की पुस्तक 'गर्ग-संहिता' से प्राप्त हुआ है । देखिये गर्ग संहिता के १० वें स्कन्ध के ६२ वें अध्याय का २९वां श्लोक ।

अब्दाश्चतुः सहस्राणि कलौ पंञ्च शतानिच ।
गते गिरिवरेहि श्री नाथः प्रादुर्भविष्यति ।।

**अर्थ**—कलियुग के चार हजार पांच सौ वर्ष व्यतीत होने पर गिरियों में जो श्रेष्ठ गिरि है (सुमेरु) उसमें श्री नाथ अर्थात लक्ष्मी के पति विष्णु का प्रादुर्भाव होगा ।

(घ) धर्मशास्त्र का एक प्राचीन मान्य ग्रंथ निर्णय सिन्धु है उसमें भी स्पष्ट ही कलियुग ४४०० वर्षों से ऊपर का लिखा है ।

चत्वार्यायाब्द सहस्राणि चत्वार्यब्द शतानिच ।
कलेर्यदा गमिष्यन्ति तथा पूर्व युगाश्रिता ।।
—निर्णय सिन्धु प्रकरण ३ पूर्वाद्ध

**अर्थ**—कलियुग जब ४४०० वर्ष गमन कर चुकेगा, तब पूर्व युगों के समान सभी कार्य प्रारम्भ हो जावेंगे । इसमें ४०० वर्ष संध्याकाल तथा ४०० वर्ष की कलियुग की अवधि—४४०० वर्ष व्यतीत होने पर कलियुग के संध्याकाल (प्रतीक्ष्यकाल) में धार्मिक कृत्य होने लगेंगे ।

## कलियुग का आरम्भ

(क) विष्णुपुराण में कलियुग के प्रारम्भ काल में लिखा है—

यदैव भगवान्विष्णोरंशो यातो दिवं द्विज ।
वसुदेवकुलोद्भू तस्तदैवात्रागतः कलिः ।।
(४ । २४ । १०८)

अर्थ—हे द्विज ! जिस समय श्री विष्णु के अंशावतार एवं वसुदेव जी के वंशधर भगवान कृष्ण निजधाम को पधारे थे उसी समय पृथ्वी पर कलियुग का आगमन हुआ था॥

(ख) यही बात श्रीमद्भागवत् में कही गई है। देखिये स्कन्ध १२ अध्याय २

यदा देवर्षय, सप्त मघासु विचरन्ति हि।
तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वादशाब्द शतात्मकः ॥ ३१ ॥
यदा मघाभ्यो यास्यंति पूर्वाषाढां महर्षयः ॥
तदा नंदात्प्रभृत्येषं कलिर्वृद्धिं गमिष्यन्ति ॥ ३२ ॥

अर्थ—जब देवर्षि सप्तर्षि मघा नक्षत्र में विचरण करते थे तब १२०० वर्ष वाला (कलियुग का प्रथम चरण) कलि प्रवृत्त हुआ और जब मघा से पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में आये, तब उसने गति पकड़ी और महाराजा महानन्द के शासन काल में वह अपनी चरम सीमा पर पहुंचा। जब भगवान कृष्ण अपने दिव्य धाम को गये उसी समय कलियुग का आरम्भ हुआ।

## कलियुग कब समाप्त हुआ ?

अधिकांश लोगों की धारणा है कि अभी तो कलियुग का प्रथम चरण ही चल रहा है, अभी कलियुग समाप्त नहीं हुआ। कलियुग समाप्ति के समय का ज्योतिष शास्त्र सम्बन्धी योग

श्रीमद्भागवत तथा विष्णुपुराण आदि ग्रंथों में दिया हुआ है।

(क) देखिये विष्णुपुराण चतुर्थ अंश का चौबीसवां अध्याय :—

यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्य वृहस्पति।
एक राशौ समेष्यन्ति तदा भवति वै कृतम् ॥ १०२ ॥

अर्थ—जब चन्द्रमा सूर्य तथा वृहस्पति ग्रह पुष्य नक्षत्र में एक राशि पर इकठ्ठे होंगे तो कृतयुग आ जायेगा।

(ख) इसी सम्बन्ध में महाभारत वन पर्व अध्याय १ का ९० वां श्लोक भी देखिये :

यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्य वृहस्पति।
एक राशौ समेष्यन्ति प्रयत्स्यति तदा कृतम् ॥
कालकर्षी च पर्जन्यो नक्षत्राणि शुभानिच।
क्षोमं सुभिक्षमारोग्यं भविष्यति निरामयम् ॥

अर्थ—जब चन्द्र, सूर्य तथा वृहस्पति तीनों ग्रह एक साथ सम अवस्था में पुष्य नक्षत्र में एक राशि पर आजायेंगे तब कृतयुग (सत्ययुग) आ जायेगा। उसके पश्चात शुभ नक्षत्रों में यथा समय वर्षा हुआ करेगी। सबका कुशल मंगल सुभिक्ष तथा आरोग्य होने लगेगा अर्थात सब लोग स्वस्थ धनधान्यपूर्ण तथा रोग रहित हो जायेंगे।

उक्त पूर्ण योग सम्वत् २००० विक्रमी में श्रावण की अमावस्या को दोपहर १२ बजे अर्थात १७ घड़ी ५३ पल पर तदनुसार दिनांक १ अगस्त सन् १९४३ ईसवी को आ चुका है।

अ० १६ श्रावण कृष्ण ३० रविवार ई०%ग १०८

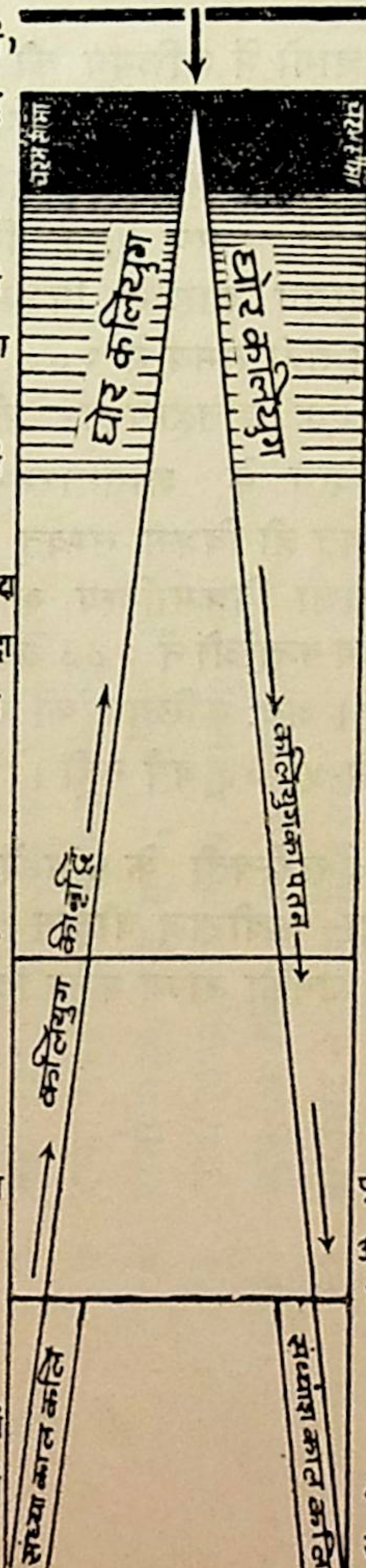
| सूर्य | चन्द्र | मंगल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि | राहु | केतु |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ३ | ३ | ० | ४ | ३ | ४ | १ | ३ | ९ |
| *१४ | १४ | २० | १ | १४ | १८ | २६ | २२ | २२ |
| ३८ | ३८ | ३८ | १२ | ३८ | ३१ | ३७ | २३ | २३ |
| ८ | ८ | ४८ | ५९ | ८ | ३३ | ५७ | २७ | २७ |
| ५७ | ५७ | ३६ | १०२ | ५७ | १९ | ६ | ३ | ३ |
| ११* | ११* | ४९ | १५ | *११ | ३६ | ५३ | ११ | ११ |

**ग्रह अंश शलाका**

* उपरोक्त ग्रह अंश शलाका में सूर्य, चन्द्र तथा व्रहस्पति के समान अंश हैं।

इसी समय सम्वंत् २००० विक्रमी में ही सप्तर्षिभी ४८०० वर्षों में ४८ नक्षत्रों पर भ्रमण करते हुए मघा से चलकर रोहिणी नक्षत्र में पहुंचेंगे। प्रस्तुत मानचित्र में स्पष्ट किया गया है :—

# नन्द वंश का शासन काल




| विक्रम पूर्व | ईसा पूर्व | नक्षत्र (सप्तर्षि) | नक्षत्र (सप्तर्षि) | ईसा पूर्व व ईसवी सन | विक्रम पूर्व व विक्रम सं. |
|---|---|---|---|---|---|
| ४०० वि. पू. | ४५६ ई. पूर्व | पुनर्वसु | पुनर्वसु | ४५६ ई. पू. | ४०० वि. पू. |
| ५०० „ | ५५६ „ | आर्द्रा | पुष्य | ३५६ „ | ३०० „ |
| ६०० „ | ६५६ „ | मृगशीर्ष | आश्लेषा | २५६ „ | २०० „ |
| ७०० „ | ७५६ „ | रोहिणी | मघा | १५६ „ | १०० „ |
| ८०० „ | ८५६ „ | कृतिका | पूर्वाफाल्गुनी | ५६ „ | ०० „ |
| ९०० „ | ९५६ „ | भरणी | उत्तराफाल्गुनी | सन ४३ इसवी | सम्वत १०० |
| १००० „ | १०५६ „ | अश्विनी | हस्त | „ १४३ „ | „ २०० |
| ११०० „ | ११५६ „ | रेवती | चित्रा | „ २४३ „ | „ ३०० |
| १२०० „ | १२५६ „ | उत्तराभाद्रपदा | स्वाती | „ ३४३ „ | „ ४०० |
| १३०० „ | १३५६ „ | पूर्वाभाद्रपदा | विशाखा | „ ४४३ „ | „ ५०० |
| १४०० „ | १४५६ | शतभिषा | अनुराधा | „ ५४३ „ | „ ६०० |
| १५०० „ | १५५६ „ | धनिष्टा | ज्येष्ठा | „ ६४३ „ | „ ७०० |
| १६०० „ | १६५६ „ | श्रवण | मूल | „ ७४३ „ | „ ८०० |
| १७०० „ | १७५६ „ | उत्तराषाढ़ा | पूर्वाषाढ़ा | „ ८४३ „ | „ ९०० |
| १८०० „ | १८५६ „ | पूर्वाषाढ़ा | उत्तराषाढ़ा | „ ९४३ „ | „ १००० |
| १९०० „ | १९५६ „ | मूल | श्रवण | „ १०४३ „ | „ ११०० |
| २००० „ | २०५६ „ | ज्येष्ठा | धनिष्ठा | „ ११४३ „ | „ १२०० |
| २१०० „ | २१५६ „ | अनुराधा | शतभिषा | „ १२४३ „ | „ १३०० |
| २२०० „ | २२५६ „ | विशाखा | पूर्वाभाद्रपदा | „ १३४३ „ | „ १४०० |
| २३०० „ | २३५६ „ | स्वाती | उत्तराभाद्रपदा | „ १४४३ „ | „ १५०० |
| २४०० | २४५६ „ | चित्रा | रेवती | „ १५४३ „ | „ १६०० |
| २५०० | २५५६ „ | हस्त | अश्विनी | „ १६४३ „ | „ १७०० |
| २६०० | २६५६ „ | उत्तराफाल्गुनी | भरणी | „ १७४३ „ | „ १८०० |
| २७०० | २७५६ „ | पूर्वाफाल्गुनी | कृतिका | „ १८४३ „ | „ १९०० |
| २८०० | २८५६ „ | मघा | रोहिणी | „ १९४३ „ | „ २००० |

## कलियुग समाप्ति के ऐतिहासिक प्रमाण

आजकल के पंचागो में कलियुग की आयु ५००० वर्ष से ऊपर देते हैं जिसका तात्पर्य यह है कि कलियुग सं २००० वि० से २०० वर्ष पूर्व ही समाप्त हो जाना चाहिए था। कलियुग की इतनी आयु लिखने का कारण यह है कि गलती से महाराजा विक्रमादित्य के शासन काल से विक्रम सम्वत का आरम्भ माना जाता है। जो सही समय से २०० वर्ष पूर्व से आरम्भ किया जाता है। एक इतिहासकार की खोज के अनुसार महाराजा विक्रमादित्य के शासनारम्भ से २०० वर्ष पूर्व प्रचलित मालव-सम्वत् ही विक्रम सम्वत् के नाम से प्रसिद्ध हो गया। अतः महाराजा विक्रमादित्य का समय २०० वर्ष पूर्व स्थिर करने से पंचांग कर्त्ताओं ने २०० वर्ष का समय इस अवधि में और बढ़ा दिया। अतः कलियुग को सम्वत् २००० वि० में कुल ४८०० वर्ष हुये ५००० वर्ष नहीं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के ग्रंथ में महाराजा युधिष्ठिर से लेकर महाराजा पृथ्वीराज चौहान तक १२ राजवंशों की बंशावलियां तथा उनका राज्य काल दिया है :—

| क्र० | राज्यकाल | वर्ष | मास | दिन |
|---|---|---|---|---|
| १ | महाराजा युधिष्ठिर से क्षेमक तक | १७६९ | ११ | १० |
| २ | राजा विश्रवा से वीरसाल सेन तक | ५०० | ३ | १७ |
| ३ | राजा वीरमहा से आदित्य केतु तक | ४४५ | ५ | ३ |
| ४ | राजा धन्धर से राजपाल तक | ३७४ | ११ | २६ |
| ५ | राजा महान पाल का राज्यकाल | १४ | ० | ० |
| ६ | महाराजा विक्रमादित्य का राज्यकाल | ९३ | ० | ० |
| ७ | राजा समुद्रपाल से विक्रमपाल तक | ३७२ | ४ | २७ |
| ८ | राजा मलुख चन्द्र से रानी पद्मावती तक | १९१ | १ | १६ |
| ९ | राजा हरिप्रेम वैरागी से महावाहु तक | ५० | ० | २१ |
| १० | राजा आधीसेन से दामोदर सेन तक | १५१ | ११ | २ |
| ११ | दीपसिंह से जीवन सिंह तक | १०७ | ६ | २२ |
| १२ | पृथ्वीराज से यशपाल चौहान तक | ८६ | ० | २० |
| | कुलयोग | ४१५६ | ९ | १४ |

श्रीमद्भागवत के अनुसार महाराजा परीक्षित के शासन-काल में कभी कलियुग ने अपना पदार्पण किया था अतः उपरोक्त समय में से महाराजा युधिष्ठिर तथा महाराजा परीक्षित का शासन काल जो ९६ वर्ष ८ मास तथा २५ दिन का है घटा देने पर शेष रहता है लगभग ४०६० वर्ष। इसका आशय यह हुआ कि महाराजा पृथ्वीराज (यशपाल) चौहान तक कलियुग का काल ४०६० वर्ष व्यतीत हो गया था। महाराजा पृथ्वीराज सम्वत् १२४९ वि० में मुहम्मद गौरी के हाथों परास्त हुए थे। उनसे सम्वत २००० वि० अथवा सन् १९४३ तक, २०००—१२४९=७५१ वर्ष हुए। अतः ४०६०+७५१=४८११ वर्ष कलियुग के व्यतीत होना चाहिए। ११ वर्ष इतने लम्बे समय में गणना की भूल के कारण भी हो सकते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि सम्वत् २००० वि० तक कलियुग के ४८०० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इसी गणना से एक अन्य तथ्य यह भी प्रकट होता है महाराजा विक्रमादित्य से पृथ्वीराज चौहान तक कुल १०५६ वर्ष हुए हैं १२४९ वर्ष नहीं। अतः २०० वर्ष पूर्व का मालव सम्वत् ही विक्रमी सम्वत प्रसिद्ध हो गया है।

## कल्कि अवतार के समय की खोज

कल्कि अवतार का आगमन कलियुग के संध्यांश काल में बताया गया है। श्रीमद्भागवत में कहा गया है :—

अथासौ युग संध्यायां दस्यु प्रायेषु राजसु।
जनिता विष्णुयश सो नाम्ना कल्किर्जगत्पति॥ १॥ ३॥ २५॥

अर्थ—हे परीक्षित ! (जिस प्रकार पूर्व में ईश्वरीयअवतार हुए

हैं) उसी प्रकार कलियुग के संधिकाल में (अर्थात सम्वत् १६०० से २००० विक्रमी तक) जहां प्रायः दस्यु होंगे ऐसे प्रदेश की राजधानी में विष्णुयश द्वारा जो जन्म लेंगे वे ही जगत्पति 'कल्कि' नाम से जाने जाएंगे।

इसका यह तात्पर्य हुआ कि कल्कि-अवतार के प्राकट्य का समय सम्वत् १६०० वि० तदनुसार सन् १५४३ ई० से लेकर सम्वत २००० वि० तद नुसार सन् १५४३ ई० के बीच में होना चाहिए। पिछले ईश्वरीय अवतार भी युगों के संध्यांश काल में ही हुए थे। जैसा कि तालिका से स्पष्ट है :—

| नाम युग | संध्यांकाल | युग की अवधि | संध्यांश काल | अवतार |
|---|---|---|---|---|
| सत्ययुग | १०० | १००० | १०० | भगवान वामन |
| त्रेतायुग | २०० | २००० | २०० | भगवान राम |
| द्वापरयुग | ३०० | ३००० | ३०० | भगवान कृष्ण |
| कलियुग | ४०० | ४००० | ४०० | भगवान कल्कि |

कल्कि पुराण में एक समय का स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है वह है राजा मरु के स्तवन प्राप्ति का समय। सूर्यवंशीय राजा मरु तथा चंद्रवंशीय राजा देवापि के आगमन के विषय में श्रीमदभागवत् व विणुपुराण आदि पुराणों में लिखा हुआ मिलता है इस सम्बन्ध में कल्कि-पुराण में निम्न उल्लेख पाया जाता है :—

कलाप ग्राम मासाद्य विद्धि सत्तपसि स्थितम् ।
तवावतारं विज्ञाय व्यासात्सत्यवती सुतात् ॥५॥
प्रतीक्ष्यकालं लक्षाब्दं कलेः प्राप्त स्तवान्तिकम् ।
(कल्कि पुराण ३ । ४)

अर्थ—राजा मरु अपना परिचय देते हुए कहते हैं कि मैं योगियों के प्रसिद्ध तपस्थल कलाप ग्राम में रहकर तप करता था। सत्यवती (पाराशर ऋषि की पत्नी) के पुत्र (महर्षि कृष्णद्वैपायन) व्यास के मुख से आपके अवतार के विषय में सुनकर कलियुग के प्रतीक्ष्यकाल (संध्यांश-काल) के "एक लाख अब्द" समाप्त होने के पश्चात आपके स्तवन को प्राप्त हुआ हूँ।

उपरोक्त संकेत में समय का स्पष्ट संकेत देते हुए राजा मरु का कलियुग के प्रतीक्ष्यकाल के १ लाख अब्द समाप्त होने पर भगवान कल्कि का स्तवन प्राप्त करना लिखा है। इन एक लाख अब्दों से क्या तात्पर्य है ? यदि कलियुग चार लाख बत्तीस हजार वर्षों का भी माना जाय तो उसका भी प्रतीक्ष्य काल ३६,००० वर्षों का ही होता है फिर एक लाख का यहां क्या अर्थ है ? यह अब्द सूर्याब्द है जो एक मानवी दिन रात के बराबर होता है। यदि इन १ लाख अब्दों के हम

३६५ दिन वाले सौर वर्ष बनायें तो लगभग २७४ वर्ष आते हैं। इसका यह तात्पर्य हुआ कि कलियुग के संध्यांश काल के २७४ वर्ष व्यतीत होने पर मरु राज भगवान कल्कि के स्तवन को प्राप्त होंगे।

कलियुग का प्रतीक्ष्यकाल—सन् १५४३ ईसवी अथवा सम्वत् १६०० विक्रमी से चला है। अर्थात इस समय के २७४ वर्ष पश्चात—

१५४३ + २७४ = १८१७ ईसवी

१६०० + २७४ = १८७४ विक्रमी में कोई परम योगी कल्कि के स्तवन को प्राप्त करने इस पृथ्वी पर पर्दापण कर चुका हैं। इस भविष्यवाणी का अवश्य ही कोई गूढ़ मंतव्य है। पाठक इस समय को याद रखें।

## भगवान अनन्त का बताया समय

कल्कि-पुराण द्वितीयांश के चतुर्थ अध्याय में महर्षि अनन्त के विषय में यह लिखा मिलता है :—

एवं वृतते द्वादशाब्दे द्वादश्यां पारणादिने।
स्नातु कामः समुद्रेऽहं बन्धुभि सहितो गतः ॥ ३२ ॥

संदर्भ—अनन्तजी कहते हैं कि हे राजागण ! पुनः मैं विस्मयापन्न हो पुरिका पुरी (त्रिपुर) त्याग भार्या सहित पुरुषोतम नामक भगवान श्री नारायण जी के स्थान में आया। उस पुरुषोतम नामक स्थान के दक्षिण भाग में उत्तम आश्रम निर्माण कर भार्या और अनुचरों सहित नारायण जी की सेवा करने

लगा। मैं विष्णु जी की माया देखने की इच्छा से नृत्य गान और जपपूर्वक यमराज का भय नाश करने वाले श्री हरि जी का ध्यान करने लगा।

अर्थ—इसी प्रकार बारह वर्ष और बारह मास व्यतीत होने पर मैंने पारणा करने के दिन स्नान करने की कामना से समुद्र में बन्धु-बान्धवों सहित गमन किया।

इन श्लोकों में कुछ गूढ़ अर्थ छिपे हुए हैं। यहां यह प्रश्न उठता है कि विष्णु जी के किस निवास स्थान में परम ऋषि अनन्त जी हरि का ध्यान करते थे। इस व्रत को वे कब से कर रहे थे ? व्रत का पारण करने और समुद्र में स्नान करने से क्या तात्पर्य है ? इसका समय क्यों और किन संकेतों के माध्यम से दिया हुआ है ? इन सभी गुत्थियों को नीचे सुलझाया जाता है :—

(क) विष्णु जी का निवास स्थान 'विष्णुलोक' है यदि वह पृथ्वी पर ही कहीं है तो सुमेरु-पर्वत के शिखरों में होना चाहिए। उसके दक्षिण में हरि के सदन से तात्पर्य "हरिवर्ष" है। हरि विष्णु का ही नाम है। इसका यह तात्पर्य निकला कि भगवान अनन्त विष्णुलोक में रहते थे फिर उसके दक्षिण पार्श्व में स्थित हरिवर्ष में आगये।

(ख) अनन्त जी इस व्रत को द्वादश अब्द तथा द्वादश मास से कर रहे थे। इतना छोटा समय मानवी गणना का नहीं केवल देवगणना का ही हो सकता है। अनन्त जी भी स्वयं देवयोनि में हैं अत: वे अपनी ही काल-गणना के हिसाब से समय बतायेंगे।

अतः इनके मानवी-वर्ष या सौर वर्ष बनाने पर—

द्वादश अब्द (देववर्ष)— १२ × ३६० = ४३२० वर्ष
द्वादश मास (देवमास)— १ वर्ष × ३५४ = ३५४ वर्ष
योग ४६७४ वर्ष

यहां द्वादश्याम का अर्थ द्वादश मास करने का तात्पर्य यही है कि इन द्वादश मासों की गणना सौर वर्ष या दिव्य वर्ष की नहीं अपितु चान्द्र वर्ष के आधार पर ही होनी चाहिए। यदि द्वादश मास की गणना का तात्पर्य देववर्ष (३६० की गणना वाला) ही होता तो यहां श्लोक में "द्वादश अब्दे" के स्थान पर त्रयोदश अब्दे होता। पर द्वादश्याम अलग देने से उससे इसका अर्थ थोड़ा भिन्न माना जाना चाहिए। द्वादश्यां शब्द तिथियों का द्योतक भी है जो चन्द्रमा की गति के आधार पर स्थिर की जाती है। अतः इसका संकेत चन्द्रमा की ओर होने से हमने इन द्वादश देवमासों को चान्द्र वर्ष गणना से ३५४ मानवी वर्ष माना है।

अतः इस भविष्यवाणी के गूढ़ अर्थ यही हैं कि भगवान अनन्त ने हरि वर्ष में ४६७४ वर्ष तक व्रत रखने के बाद पारण किया। ये वर्ष क्या हैं? ये अन्य कुछ नहीं हो सकते केवल कलियुग के वर्ष हैं। भगवान अनन्त (विष्णु का अवतार) का आगमन द्वापर युग के अन्त में ही हुआ था और उनके परलोक गमन के पश्चात ही कलियुग का आरम्भ हुआ। अतः इसका मन्तव्य यही है कि भगवान अनन्त का पुनः ४६७४ वर्ष (कलियुग के) व्यतीत होने पर संसार-सागर में बन्ध-बान्धवों के साथ आगमन हो रहा है।

कलियुग की अवधि कुल ४८०० वर्षों की सिद्ध की जा चुकी है। अत: ४८००—४६७४=१२६ वर्ष कलियुग समाप्ति के पूर्व भगवान अनन्त (विष्णु) अपनी ब्रह्माराधना त्यागकर संसार-सागर में स्नान करने की कामना से बन्धु-बान्धवों सहित उसमें उतरे।

सन् १९४३ ईसवी अर्थात सम्वत् २००० विक्रमी में कलियुग के ४८०० वर्ष पूर्ण हुए अत: उसके १२६ वर्ष पूर्व का समय क्या आता है देखें—

| | |
|---|---|
| सन् १९४३ ईसवी | अथवा सम्वत् २००० विक्रमी |
| (—) १२६ | (—) १२६ |
| सन् १८१९ ईसवी | सम्वत् १८७४ विक्रमी |

अत: उपरोक्त भविष्य वाणी का संकेत भी सन् १८१७ ईसवी अथवा सम्वत् १८७४ विक्रमी की ओर है।

### कल्कि-अवतार का एक अन्य समय

कल्कि-पुराण में कल्कि-अवतार का एक समय और प्राप्त होता है देखिये प्रथम अंश का द्वितीय अध्याय

महिमां स्वस्य भगवान्निजजन्म कृतोद्यम:
विप्रर्षे ! शम्भलग्रामभाविवेश परात्मक: ॥ १० ॥
सुमत्यां विष्णुयशसा गर्भमाधत्त वैष्णवम् ।
ग्रह नक्षत्र राश्यादि सेवित श्री पदाम्बुजम् ॥ ११ ॥

अर्थ-हे ऋषिगण। अपनी महिमा के बल से परमात्मा भगवान विष्णु जी ने स्वयं जन्म लेने को उद्यत हो शम्भलग्राम में प्रवेश

किया। वहां विष्णुयश के शुक्रसे सुमति रूपी गर्भ में नक्षत्र राशि आदि से श्री पदाम्बुज विष्णु भगवान गर्भस्थ भ्रूण रूप से सेवित हुए।

उपरोक्त श्लोक का आशय यह है कि विष्णुयश की सुमति या बुद्धि में भगवान विष्णु के तेज ने प्रवेश किया। उनके चरणकमल किसी समय विष्णुयश की बुद्धि रूपी गर्भ में इस प्रकार प्रविष्ट हुए। परन्तु यहां या आगे कहीं भी उस ग्रह नक्षत्र या राशि का कोई संकेत प्राप्त नही होता। यहां भी किसी गूढ़ ढंग से समय बताने की चेष्टा की गई है। श्लोक की अन्तिम पंक्ति में एक संख्या प्रतीकात्मक अंकों में बड़े गूढ़ ढंग से दी गई है। वह यह है

| ग्रह | नक्षत्र | राशि | आदि सेवित | श्रीपद | अम्बु | जम |
| --- | --- | --- | --- | --- | --- | --- |
| ९ | २७ | १२ | + | २ | ००० | ० |

संख्यानां दक्षिणोगतिः के सिद्धान्त के अनुसार इसे सीधा ही पढ़ेंगे क्योंकि यहां संख्या ही दी गई है अंक नहीं हैं। अतः

९२,७१२+२०,०००=१,१२,७१२ संख्या बनती है।

इससे अन्य कुछ तात्पर्य नहीं केवल सूर्याब्दों से हैं। इसका आधार भी कलियुग का संध्यांश काल ही है।

अतः १,१२,७१२ में ३६५ का भाग देने पर ३०८ वर्ष २९२ दिन अर्थात् लगभग ३०९ वर्ष आते हैं।

सन् १५४३ ईसवी के ३०९ वर्ष पश्चात सन् १८५२ ई० तदनुसार सम्वत् १९०९ विक्रमी आता है। यही वह समय है

जब इस पृथ्वी पर भगवान विष्णु का प्रसिद्ध कल्कि-अवतार कहीं हो चुका है बिलकुल उसी भांति जैसे भगवान कृष्ण का जन्म हुआ था।

**भक्त सूरदास जी द्वारा बताया गया समय--**

कल्कि-पुराण के उपर्युक्त श्लोकों के अतिरिक्त संत सूरदास जी ने भी अपने प्रसिद्ध पद में समय का एक बहुत स्पष्ट संकेत दिया है। उनका यह पद व्रजक्षेत्र के निवासियों की जवान पर है इसे किसी पुस्तक से उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं।

**अरे मन धीरज क्यों न धरै।**
**मेघनाद रावण को बेटा सो पुनि जन्म धरै।।**
**पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण चहुंदिशि काल परै।**
**अकाल मृत्यु जगमाहीं व्यापै प्रजा बहुत मरै।**
**दुष्ट दुष्ट को ऐसौ काटे जैसे काठ जरै।**
**एक सहस्र नौ सौ सै ऊपर ऐसौ योग परै।**
**सहस बरस तक सतयुग बीतै धरम की बेल बढ़ै।**
**स्वर्ण फूल पृथ्वी पर फूले पुनि जग दशा फिरै।**
**'सूरदास' यह 'हरि' की लीला टारे नाहिं टरै।।**

उपरोक्त पद में निम्न मुख्य मुख्य संकेत दिये गये हैं :—

(क) मेघनाद और रावण दोनों प्रबल राक्षसों का फिर आगमन हो रहा है। (अवश्य ही यह पृथ्वी के किन्हीं सम्राटों की ओर संकेत है।)

(ख) संसार के बीचों बीच में कहीं किसी स्थान पर लोगों को अकाल मृत्यु के कारण मरना पड़ रहा है। (क्या उन्हें मारा तो नहीं जा रहा)।

(ग) एक हजार नौ सौ से ऊपर यानी १६०१ में कोई विशेष योग उपस्थित हो रहा है (क्या यह विक्रम संवत् तो नहीं है ?)

(घ) इस योग के कारण पृथ्वी पर एक हजार वर्ष का सत्ययुग उपस्थित हो रहा है जिसके कारण संसार में धर्म की बेल बढ़ेगी।

(ङ) इस सत्ययुग के आगमन से इस पृथ्वी पर धन-धान्य स्वर्ण आदि की वृद्धि होगी और संसार की दशा फिर बदल जाएगी।

(च) संत कवि सूरदास जी कहते हैं कि यह सब उस **हरि की लीला** के कारण सम्पन्न होगा जो टालने से भी नहीं टल सकती।

उपरोक्त पद में स्पष्ट ही **सम्वत् १६०१ विक्रमी** की ओर संकेत है। हमें देखना है कि संवत् १६०१ विक्रमी में क्या योग पड़ा ? पृथ्वी पर इस समय किस घटना का सूत्रपात हुआ ? इसका आरम्भ 'हरि की लीला' के कारण बताया जा रहा है जिससे यह स्पष्ट पता लगता है कि भगवान विष्णु (हरि) की लीला के कारण ही उक्त घटनाओं का आरम्भ हो रहा है। इस सं० १६०१ वि. में ईसवी सन् १८४४ ईसवी आता है।

**जब आवै संवत बीसा**

पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश तथा दिल्ली के आस पास एक भविष्योक्ति लोकोक्ति के रूप में बहुत ही प्रसिद्ध है। उसके शब्द निम्न हैं :—

**जब ग्रावै सवत बीसा। तो मुस्लिम रहे न ईसा।।**

अथवा

**जब ग्रावै संवत बीसा। तो मुहम्मद रहे न ईसा।।**

अर्थात् जब संवत बीसा आयेगा तो मुहम्मद और ईसा जो ईश्वरीय अवतार थे उनका युग समाप्त होकर दूसरे अवतारों का युग आरम्भ हो जायेगा। संवत बीसा से तात्पर्य स्पष्ट ही विक्रम संवत् है। यहाँ बीसा के निम्न अर्थ हो सकते हैं।

**(क)** जब विक्रम सम्वत् के हिसाब से उन्नीस शताब्दी समाप्त होकर बीसवीं शताब्दी का आरम्भ हो। संवत् १९०० विक्रमी में विक्रमी संवत् की १९ शताब्दी पूरी होकर संवत् १९०१ वि० में बीसवीं शताब्दी या बीसवीं सदी का आरम्भ हो गया है। इसमें सन् १८४४ ईसवी आता है।

**(ख)** यह सम्वत् २००० विक्रमी से पूर्व के किसी बीसवें संवत् की ओर भी संकेत करता है। संवत् २००० से पूर्व बीसा संवत् केवल सं १९२० विक्रमी ही हो सकता है, जिसमें सन् १८६३ ईसवी आता है।

**निष्कर्ष** :—उपरोक्त भविष्योक्ति से यह निष्कर्ष निकलता है कि इसमें दो समयों की ओर संकेत है :-

**(क)** एक तो सन् १८४४ ईसवी की ओर।

**(ख)** दूसरा सन् १८६३ ईसवी की ओर।

क्या इस भविष्यवाणी का इंगित इसकी ओर तो नहीं कि एक समय में तो हजरत मुहम्मद का पुनरागमन हो रहा है और

दूसरे में ईसामसीह का हमें इतिहास में इन दोनों घटनाओं का पता लगाना है।

**संवत् बीसा की ओर तुलसीदास जी का संकेत :–**

रामचरित मानस उत्तर काण्ड में कागभुषुण्डि जी पक्षिराज गरुड़ से कहते हैं :—

**तब कलिकाल बरस बहु बसेउ, अबध बिहगेस।**
**परेउ दुकाल विपत्ति बस तब मैं गयउ विदेस ॥१०४॥**

**अर्थ**—कागभुषुण्डि जी यहां गरुड़ जी से वार्तालाप करते हुए कहते हैं कि मैं कलियुग के बहुत से बरसों तक अवध (अयोध्या) में रहता रहा परन्तु जब दुष्काल पड़ा तो अवध का निवास त्याग कर विदेश चला गया। इससे यह स्पष्ट है कि भगवान राम की राजधानी अयोध्या में कलियुग के बहुत से बरसों तक कागभुषुण्डि रहते रहे और कलियुग ही में वे विदेश गये। पर देखिये कागभुषुण्डि इस चौपाई में क्या कहते हैं :—

**इहां बसत मोहि सुनु खगईसा।**
**बीते कलप सात अरु बीसा ॥**

**अर्थ**—हे पक्षिराज गरुड़ ! मुझे इस स्थान पर बसते हुए सात और बीस अर्थात् २७ कल्प हो गए। उपरोक्त दोनों ही कथनों में विरोधाभास है। अतः इस चौपाई का कोई गूढ़ अर्थ होना चाहिए। यहां और कुछ नहीं सांकेतिक भाषा में कोई स्पष्ट समय बताने की चेष्टा की गई है। एक कल्प में १४ मन्वन्तर होते हैं और एक मन्वन्तर में ७१ चतुर्युग। ये २७

कल्प नहीं हैं। अतः यदि २७ में ७१ से गुणा करें तो १९१७ प्राप्त होता है। जो लगभग संवत् १९१७ विक्रमी की ओर संकेत करता है ।

इस समय सन् १८६०-६३ ईसवी आता है जो उपरोक्त समय से मिलता है ।

---

# कल्कि-अवतार के स्थान सम्बन्धी भविष्यवाणियां

कल्लि-पुराण में कल्कि-अवतार सम्बन्धी स्थानों के पर्याप्त और स्पष्ट संकेत हैं। इन सबका आधार प्राचीन पौराणिक भूगोल है। यदि इस प्राचीन वर्ष-विभाजन को समझ लिया जाए तो स्थान का पता बड़ी सरलता से लग सकता है। श्रीमद्‌भागवत् में कल्कि-अवतार के प्राकट्य-स्थल की दो बड़ी प्रसिद्ध भविष्यवाणियां हैं जो सम्पूर्ण देश के जन जन में प्रसिद्ध हैं।

(१) **दस्यु प्रायेषु राजसु :—**

श्रीमद्‌भागवत प्रथम स्कन्ध तृतीय अध्याय का २५ वां श्लोक कल्कि-अवतार के स्थान के विषय मैं यह संकेत देता है।

**अथासौ युग संध्यायां दस्यु प्रायेषु राजसु।**
**जनिता विष्णुयश सो नाम्ना कल्किर्जगत्पति।। २५।।**

**अर्थ**—हे परीक्षित! जिस प्रकार पूर्व में ईश्वरीय अवतार हुए उसी प्रकार कलियुग के संधिकाल में (सम्वत् १६०० से २००० विक्रमी तक) जहां प्रायः दस्यु होंगे ऐसे प्रदेश की राजधानी में विष्णुयश द्वारा जो जन्म लेंगे वे ही जगतपति कल्कि नाम से जाने जायेंगे।

यहां स्पष्ट रूप से 'दस्यु प्रायेषु राजसु' में स्थान का संकेत दिया गया है जिसका अर्थ होता है कि प्रायः जहां दस्यु होंगे

ऐसे प्रदेश की राजधानी में उनका जन्म होना चाहिए। भारतवर्ष के उत्तर पश्चिमी प्रदेशों से ही वहां के सम्राट् या राजा लोग लुटेरों की भाँति इस प्रदेश पर आक्रमण करते रहे हैं अतः इन्हीं पश्चिमी देशों को किसी समय दस्यु या म्लेच्छ देश कहा जाता रहा। मुगलों के शहंशाह मुहम्मद शाह के शासन-काल में नादिरशाह का प्रसिद्ध आक्रमण हुआ जो ईरान का एक क्रूर शहंशाह था। ईरान देश बहुत समय से बड़े अधर्म और अत्याचार से भरा हुआ था। सम्पूर्ण पृथ्वी का उद्धारक ईश्वरीय अवतार भी सदैव ऐसे ही स्थान से जन्म लेता है जो अधर्म और अनाचार से त्रस्त भूमि हो। भगवान कृष्ण का जन्म भी अत्याचारी प्रबल राजा कंस की राजधानी मथुरा से हुआ था। अतः कल्कि अवतार जैसा विश्व-अवतार (जगत्पति) भी किसी ऐसे ही प्रदेश से आना उचित लगता है जहां अत्याचार तथा अधर्म की पराकाष्ठा हो गई हो।

**(२) अवतार 'शम्भल' स्थान से होगा—**

भारतवर्ष में यह प्रसिद्ध है कि हिन्दुओं का प्रसिद्ध कल्कि-अवतार 'शम्भल' नामक स्थान से होगा। ऐसा निम्न श्लोक के आधार पर कहा जाता है। देखिये श्रीमद्भागवत द्वादश स्कन्ध द्वितीय अध्याय का १८ वां श्लोक—

**शम्भल ग्रामः, मुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः।**
**भवने विष्णुयश सः कल्कि प्रादुर्भविष्यति ॥१८॥**

**अर्थ**—शम्भल ग्राम में उसके मुखिया के, ब्राह्मण महात्मा के, भवन से विष्णुयश ही कल्कि का प्रादुर्भाव करेंगे। इस श्लोक से हमें निम्न सूचनाएं प्राप्त होती हैं :—

(क) उस देश की राजधानी का नाम 'शम्भल' है।

(ख) उसी राजधानी के समीपवर्ती ग्राम के किसी मुखिया के, जो ब्राह्मण तथा महात्मा हैं, उन्हीं के भवन में जन्मे विष्णुयश ही 'कल्कि' का प्रादुर्भाव करेंगे। यहां यह स्पष्ट होता है कि 'शम्भल' नगर में किसी समीपस्थ ग्राम के मुखिया निवास करते हैं, जो उच्च कुल तथा वंश के ब्राह्मण तथा महात्मा हैं, उन्हीं के भवन में विष्णुयश जन्म लेंगे और वे ही 'कल्कि' का प्रादुर्भाव करेंगे। प्रायः सभी पौराणिक ग्रंथों में महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास नें स्थान का नाम 'शम्भल' दिया है। पौराणिक टीकाकारों ने इस 'शम्भल' के उच्चारण से मिलता जुलता नाम 'सम्भल' देखकर भगवान कल्कि का जन्म स्थान 'सम्भल' जो मुरादाबाद (उत्तर प्रदेश) की एक तहसील का नाम है लिख दिया है, जो हर प्रकार से गलत सिद्ध होता है। भारतवर्ष में इसके अतिरिक्त एक और 'सम्भल' उड़ीसा में भी है। इसी प्रकार 'सम्मड्याल' नाम का एक स्थान पंजाब में देखकर भी धोखेबाजों ने उसे ही शम्भल' बना दिया है। कल्कि-अवतार की लीला भूमि के कल्कि-पुराण में कुल ६८ स्थान जो तीर्थस्थान कहे गये हैं देख कर कुछ स्वार्थियों ने अकेले 'सम्भल' कस्बे में ही ६८ मन्दिर बना डाले हैं। तीर्थस्थान ऐसे नहीं बना करते। स्वाभाविक रूप से अवतार के जाने से जो अलग अलग स्थान बनते हैं वे ही अलग अलग तीर्थ-स्थान के रूप में प्रसिद्ध हो जाते हैं। एक ही जगह मन्दिर बना लेने से वे तीर्थस्थान नहीं हो सकते।

**(३) कल्कि-पुराण में 'शम्भल' नगर का विस्तार :—**

कल्कि पुराण में इस 'शम्भल' नगर का विस्तार और

उसके मकानों आदि का वर्णन दिया हुआ है। देखियेकल्कि-पुराण द्वितीयांश, छठवें अध्याय का २०वाँ श्लोक—

**सप्त योजन विस्तीर्णं चातुर्वण्य जनाकुलम् ।**
**सूरर्य रश्मि प्रतीकाशं प्रासाद शत शोभितम् ॥२०॥**

**अर्थ** :—'शम्भल' नगर सात योजन में फैला हुआ है। इसमें चारों वर्णों के लोग रहते हैं। सूर्य रश्मियों की भांति (उज्जवल) सफेद सैकड़ों महल यहां शोभित हो रहे हैं। उपरोक्त श्लोक से यह पता लगता है कि 'शम्भल' नगर कोई छोटा सा कस्बा नहीं है अपितु एक बहुत बड़ा नगर है जो सात योजन ७×४=२८ कोस या ५६ मील में फैला हुआ है। ५६ मील से आशय सम्भवतः ५६ वर्गमील से है (अर्थात ८ मील लम्बा तथा ७ मील चौड़ा) इसमें सैकड़ों श्वेत रंग के वड़े-बड़े महल आदि बने हैं। सूर्य की रश्मियों से प्रकाशित होकर ये महल बड़े ही शोभायमान लगते हैं। यहां भी चारों वर्णों के लोग मतलब ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों का कर्म करने वाले जनों के कुल निवास करते हैं।

### (४) विश्व के किस देश की राजधानी का नाम 'शम्भल'—

यहाँ एक समस्या उठती है कि विश्व के किसी देश की राजधानी का वर्तमान नाम 'शम्भल' नहीं है। तब 'शम्भल' से क्या तात्पर्य है ? यहाँ पर विचार कीजिए कि भविष्यवक्ता व्यास जी यदि किसी नगर का नाम श्लोकों में देगे तो वह किस भाषा में होगा। स्पष्ट ही संस्कृत भाषा में। इससे यह पता लगता है कि 'शम्भल' नाम किसी नगर के नाम का शब्दार्थ है। भविष्य-वाणियों में जितने भी नाम दिये गये हैं

चाहे वे ग्राम या नगरों के हों चाहे व्यक्तियों के, वे सभी संस्कृत भाषा में ही होंगे। अवश्य ही थोड़ा गूढ़ बनाने के लिए भी स्थान का नाम स्पष्ट नहीं दिया जाता।

हमारी इस समस्या को दशम ग्रन्थ साहब की यह भविष्य वाणी सुलझा देती है।

**निकसै ज्यूं केहरि पर्वत सों तिस शोभा देवाल बिच पायेंगे।**
**बड़े भाग भये उस 'शम्भल' के हरि जी 'हर-मन्दिर' में आवेंगे।।**

यहां इस भविष्यवाणी में विष्णु भगवान का हर-मन्दिर अर्थात् शंकर के मन्दिर से जन्म लेना बताया गया है। साथ ही पर्वतों के बीच देवाल या देवताओं के आलय से आना बताया गया है।

इसी प्रकार संत कबीरदास जी भी अवतार का आना 'शिव की पुरी' से बताते हैं।

**शिव की पुरी बसै बुधि सारू।**
**तह तुम मिलके करहु विचारू।।**

अर्थात्—वह बुद्धि का सार तत्व शिव की पुरी में बसता है। वह शिव की पुरी कहां है? यह तुम सब मिलकर विचार करो।

उपरोक्त भविष्यवाणियों से यह पता चलता है कि 'शम्भल' से तात्पर्य भगवान शम्भ अर्थात् शंकर के स्थान से है। शम्भल शब्द के अर्थ करने पर—

शम्भल=शम्भ+अल्

=शम्भालय अथवा शम्भु का आलय
=अर्थात् जहां भगवान शम्भ यानी शिव का स्थान हो।

इससे यह पता चलता है कि उस नगर के नाम का शब्दार्थ 'शम्भल' है वह भगवान शम्भ (शंकर, शिव या हर) का भी निवास स्थान है। यहां महर्षि व्यास जी के इस मंतव्य का पता लगता है कि वे 'शम्भल' लिख कर उस नगर के नाम का शब्दार्थ भी देना चाहते थे और यह भी बताना चाहते थे कि वह नगर भगवान शंकर का नगर भी है। भगवान शंकर का एक नगर तो काशी कहलाता है दूसरा उज्जैन पर इन दोनों के ही नामों का शब्दार्थ 'शम्भल' नहीं है। एक अन्य नगर 'त्रिपुर' भी शंकर का नगर कहा जाता था जिसका पुराणों में विस्तत विवरण प्राप्त होता है पर हमें पता नहीं इस नगर की स्थिति कहां है ? इस पर हम यथास्थान विचार करेंगे।

कल्कि-पुराण में भगवान शंकर की एक स्तुति की गई है देखिये कल्कि-पुराण प्रथमांश तृतीय अध्याय के २६ वें श्लोक की अन्तिम पंक्ति।

**मेरुर्मध्ये भुवनानांञ्च भर्त्ता तमीशानं विश्व रूपं नमामि।२०।**

**अर्थ**—मेरु के और समस्त भुवनों के मध्य में बिराजने वाले समस्त संसार के भर्त्ता तथा स्वामी आपके इस विश्वरूप को मैं नमस्कार करता हूं।

देखिये 'शम्भल' स्थान के विषय में हमें कितना महत्वपूण

निर्देश प्राप्त होता है कि यह 'शम्भल' स्थान सुमेरु-पर्वत के बीच में और समस्त भुवनों अथवा देशों के मध्य में है। प्राचीन पौराणिक भूगोल में १४ भुवन बताये गये हैं। इन्हीं सब भुवनों के मध्य में सुमेरु-गिरि भी बताया गया है। गर्ग-संहिता के रचियता व भगवान कृष्ण के राज पुरोहित महर्षि गर्गाचार्य्य जी इस सुमेरु की स्थिति इस प्रकार बताते हैं।

अब्दाश्चतुः सहस्राणि कलौ पञ्च शतानिच।
गते गिरिवरेहि श्रीनाथः प्रादुर्भविष्यति॥

अर्थ :—कलियुग के चार हजार पांच सौ वर्ष व्यतीत होने पर गिरिवर अर्थात् गिरियों में श्रेष्ठ (सुमेरुगिरि) के मध्य श्री नाथ जी प्रादुर्भवित होंगे।

अब देखें इस गिरिवर सुमेरु की स्थिति गर्ग संहिता में क्या बताई गई है ?

भारतानां च खण्डानां जम्बूद्वीपे यथामुने।
मध्ये संराजते मेरुः सौवर्णः पद्म पुष्पवत्॥
(गर्ग संहिता १०।६२।४०)

अर्थ :—हे मुने ! जम्बूदीप के भारतादि खण्डों के मध्य में सुवर्ण जैसी कान्ति वाला सुमेरु गिरि इस प्रकार शोभित होता है जैसे कमल के फूल में उसकी कर्णिका (केशर वाला भाग)

उक्त श्लोक से यह पता लगता है कि सुमेरु-गिरि की स्थिति भारत आदि देशों के बीच में कहीं उसी प्रकार होनी चाहिये जैसे अष्टदल कमल के बीचों बीच उसकी कर्णिका।

आइए प्राचीन पौराणिक भूगोल के आधार पर इसकी स्थिति ढूंढने का प्रयत्न करें। इस समय हमें जम्बूद्वीप की स्थिति स्पष्ट ज्ञात नहीं है पर हमारा भारतवर्ष इस जम्बूद्वीप का ही एक भाग है। पुराणों में कहा गया है कि जम्बूद्वीप के चारों ओर महासागर है। वर्तमान अफ्रीका जो एशिया से जुड़ा हुआ था तथा यूरोप आदि तीनों महाद्वीपों का वृहद्‌भूभाग हो जम्बू द्वीप नाम से जाना जाता था। इसी के बीच में कही 'सुमेरु गिरि होना चाहिए। इस सम्पूर्ण भूखण्ड के बीचों बीच एक मात्र पर्वत श्रेणियाँ एलबुर्ज पर्वत की हैं जो कास्पियन सागर को अर्द्धचन्द्राकार वृत बनाकर घेरती हुई स्थित हैं। इन पर्वत श्रेणियों की आकृति बिलकुल सुमेरु शिखरों से मिलती जुलती है। इस एलबुर्ज पर्वत-श्रेणियों का नाम तो इस समय सुमेरु नहीं है पर इन्हीं के नीचे दजला और फरात नदियों कीघाटी में जिस सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं उसे आधुनिक इतिहास में **'सुमेरियन-सभ्यता'** के नाम से जाना जाता है। अतः हमारे पौराणिक भूगोल के अनुसार ये ही पर्वत श्रेणियां किसी ससय सुमेरु शिखर की श्रेणियाँ कहलातीं थीं। पुराणों मे इनका विस्तार १००० योजन ही बताया गया है। इनकी आकृति अर्द्धचन्द्राकार पानी भरने के पुर की भांति बताई गई है जिस के मध्य में सागर (क्षीर सागर) स्थित है। यहां भी कास्पियन सागर को ये पर्वत श्रेणियां घेरती हुई स्थित हैं। इस समय ये ईराक तथा ईरान देशों के उत्तार में तथा रूस के दक्षिण में स्थित हैं। पौराणिक भूगोल में इस पर्वत श्रेणी के पश्चिम व दक्षिण में स्थित देशों को मेरु देश कहा जाता था। इन मेरु देशों में आजकल टर्की, सीरिया, ईराक, ईरान तथा रूस का दक्षिणी भाग आता है। इसी के नीचे बसा हुआ वर्ष किसी समय **'इलावृत-वर्ष'** कहलाता था। ईरान के प्राचीन

इतिहास में इस देश का नाम भी **'ईलाम'** बताया गया है जिस के निवासी ईलामी (ELLAMITES) कहे जाते हैं। इस नाम का उच्चारण **'इलावृत-वर्ष'** से काफी मिलता हुआ है।

उपरोक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि 'शम्भल' वस्तुतः इसी पर्वत श्रेणी के नीचे स्थित किसी देश की राजधानी का नाम है। इस समय इन पर्वत श्रेणियों के ठीक नीचे ईरान की राजधानी है जिसका नाम तिहरान या तेहरान है। इस देश की भाषा फारसी है अतः हम पहले तो तिहरान के अर्थ फारसी में ही करके देखें क्या निकलते हैं।

**तिहरान=ताहिर (तहूर) आन**
**ताहिर=पवित्र**
**आन=भूमि या स्थान**

'शम्भल' के शाब्दिक अर्थ भी संस्कृत में बिल्कुल यही निकलते हैं—

**शम्भ =पवित्र**
**अल=आलय अथवा अयन।**

बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि हिन्दी भाषा में भी इस उच्चारण का शब्दार्थ 'हर का अयन' अर्थात् शम्भल निकलता है। तिहरान शब्द की हिन्दी भाषा के हिसाब से विभक्ति करने पर :-

**ति+हर+आन=त्रि+हर+अयन**

शिवपुराण में भगवान शंकर का एक प्रसिद्ध नगर 'त्रिपुर',

जो वस्तुतः दैत्यों का पुर था, जहां अत्यन्त सुन्दर लोग निवास करते थे, बताया गया है। कहीं यह तिहरान नगर वही 'त्रिपुर' नगर तो नहीं है ? सम्भवतः महर्षि व्यास जी का तिहरान को शम्भल बताने का यही मंतव्य प्रतीत होता है कि भगवान शिव सम्बन्धी कथाओं तथा पौराणिक घटनाओं का पता लगाने पर यहाँ अधिकांश बातें मिलती प्रतीत होती हैं जिससे इस स्थान की सरलता से पहचान हो सकती है। अतः 'शम्भल' नाम से व्यास जी का मतव्य निश्चय ही 'तिहरान' की ओर संकेत करता है।

(५) **कल्कि का जन्मस्थान 'त्रिपुर' नामक नगर :—**

(क) कल्कि-पुराण द्वितीयांश चतुर्थ अध्याय के इस श्लोक में भगवान अनन्त अपना निवास स्थान बताते हुए कहते हैं :-

**पुरिकायां पुरि पुरा पिता मे वेदपारगाः ।**
**विद्रुमो नाम धर्मज्ञ ख्यातः परहिते रतः ।।१४।।**

अर्थ :—पुरियों की पुरी में ईश्वरीय ज्ञान को जानने वाले दूसरों की भलाई में लगे रहने में प्रसिद्ध एक विद्रुम नामक पुराविद् धर्मज्ञ रहते थे। वे ही हमारे पिता थे।

यहां पर 'शम्भल' को पुरियों की पुरी अर्थात् त्रिपुर की पुरी बताया गया है। पुरियों से तात्पर्य भी तिहरान से है। हर का अयन एक पुरी हुई पर शब्द 'ति' लग जाने से एक व दो से अधिक तीन पुरी अर्थ हुआ। अतः बहुवचन होने से यहां पुरिकायां शब्द लिखा गया है जिसका मंतव्य निश्चय ही 'तिहरान' से है।

(ख) इसी विषय में इसी अध्याय के अन्य श्लोक भी इस

स्थान पर विस्तृत रूप से प्रकाश डालते हैं।

सविस्मयः सभार्य्योऽहं त्यक्त्वा तां पुरिका पुरीम् ।
पुरुषोत्तमाख्यां श्री विष्णोराल वञ्चागमं नृपाः ॥२९॥
तत्रैव दक्षिणे पाश्वे निर्मायाश्रममुत्तमम् ।
सभार्य्याः सानुगामात्यः करोमि हरि सेवनम् ॥३०॥
माया संदर्शनाकांक्षी हरिसद्मनि संस्थितः ।
गायन्नत्यञ्जपानाम चिन्तयच्छमनापहम् ॥३१॥

**अर्थ** :—हे राजागण ! पुनः मैं विस्मयापन्न हो पुरिकापुरी त्याग कर भार्य्या सहित पुरुषोतम नामक श्रीनारायण जी के स्थान में आया। उस पुरुषोतम स्थान के दक्षिण भाग में उत्तम आश्रम निर्माण कर भार्य्या और अनुचरों सहित नारायण जी की सेवा करने लगा। मैं हरि-सदन में स्थित होकर उनकी माया देखने की इच्छा से नृत्यगान और जपयूर्वक यमराज का भय नाश करने वाले श्री हरि जी का ध्यान करने लगा।

यहां पर हम इस कथा में वर्णित गूढ़ रहस्य पर प्रकाश डालते हुए इन श्लोकों में केवल स्थान सम्बन्धी संकेतों पर विचार करेंगे।

(अ) अनन्त जी अपना मूल निवास स्थान **पुरिकाओं की पुरी (त्रिपुर)** बताते हैं।

(ब) भार्य्या सहित वे पुरुषोत्तम नामक भगवान विष्णु के लोक में जाते हैं।

(स) तत्पश्चात उस पुरुषोत्तम नामक स्थान के दक्षिण भाग में हरि के सदन अथवा हरि-वर्ष में आते हैं।

इनसे यह स्पष्ट होता है कि "पुरिका पुरी" तिहरान का

समीपवर्ती ग्राम ही उनका मूल निवास स्थान है तिहरान का समीपवर्ती ग्राम नूर (प्रकाश) है।

इसी प्रकार पुरुषोत्तम नामक स्थान भी कहीं एलबुर्ज-पर्वत पर ही होना चाहिए। पुरुषोत्तम भी किसी स्थान के नाम का संस्कृत अनुवाद है। पुरुषोत्तम शब्द के अर्थ करने पर पुरुषों में उत्तम अर्थात राजा होता है और राजाओं में भी सबसे बड़ा राजा महेन्द्र या इन्द्र कहलाता था। तो यहां पुरुषोत्तम से तात्पर्य महेन्द्र और उनके स्थान "महेन्द्रायण" से है। इस महेन्द्रायण शब्द का अपभ्रंश है :—

**महेन्द्रायण=महेन्द्र अयन**
**=महिन्दर आन**
**=माहिन्दरान अथवा माजिन्दरान**

फारसी भाषा में 'ह' अक्षर का उच्चारण 'ज' हो गया है। अत: माहिन्दरान शब्द 'माजिन्दरान' बन गया है। ईरान के निवासियों का यह विश्वास है कि पृथ्वी का सबसे पहला राजा इसी माजिन्दरान प्रदेश का राजा था। इससे यह निष्कर्ष निकला कि ईरान देश के उत्तरीय पर्वतीय अंचल का यह प्रान्त जो इस समय माजिन्दरान कहलाता है उसी को यहां सुमेरु-गिरि का पुरुषोत्तम प्रान्त कहा गया है। इसी माजिन्दरान प्रान्त में जहां किसी समय महर्षि कश्यप और उनके पुत्र आदित्यों (देवों) का राज्य था, उनके सबसे छोटे भाई विष्णु का राज्य भी था। अत: इसे किसी समय विष्णुलोक भी कहा जाता था। (देखिये आचार्य चतुरसैन शास्त्री की पुस्तक वयं रक्षाम:) अत: यहां यह पता लगता है कि अनन्त जी इसी प्रांत के दक्षिण में हरि-सदन अर्थात् हरि-वर्ष में आते हैं। सुमेरु के

दक्षिण में ही इलावृत और उसके समीप ही पूर्व में हरि-वर्ष बताया गया है।

## (६) भगवान शंकर का मूलस्थान 'इलवृतवर्ष'

भगवान शंकर का मूल स्थान श्रीमद्भागवत पुराण में स्पष्ट ही 'इलावृत-वर्ष' बताया गया है। देखिये श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध के सत्रहवें अध्याय का १५ वां श्लोक :—

**इलावृते तु भगवान भव एक एव पुमान् नह्यन्यस्तत्रापरो निर्विशति भवान्याः शापनिनितज्ञः यत् प्रवेक्ष्यतः स्त्री भावस्तत् पश्चाद् वक्ष्यामि ॥१५॥**

**अर्थ** :—इलावृत खण्ड में तो एक पुरुष महादेव जी ही हैं दूसरा पुरुष वहां नहीं जाता, यदि आवे तो पार्वती जी के शाप से स्त्री बन जाता है। अतः इसी हेतु भविष्यवक्ता महर्षि व्यास जी ने यहीं श्रेष्ठ समझा कि इस स्थान का नामकरण शम्भ का स्थान अर्थात् शम्भल किया जाय।

इस सम्बन्ध की कथा शिवपुराण आदि ग्रन्थों में देखने पर पता लगता है कि भगवान शंकर हिमालय-पवत के कैलाश नामक स्थान का त्याग करके अपने मूल स्थान, सुमेरु-पर्वत के ज्योतिः स्थल शिखर पर चले गये, जो सिद्धों तथा देवताओं से सेवित पर्वत बताया गया है। यहीं पर पार्वती उमा ने पुरुषों के प्रवेश के लिए एक निषिद्ध क्षेत्र घोषित किया जो **'उमावन'** नाम से प्रसिद्ध है। उनका इस स्थान के विषय में यह शाप था कि जो भी पुरुष शंकर-पार्वती के विहार-क्षेत्र, इस उमावन में प्रवेश करेगा वह तुरन्त ही स्त्री हो जाएगा। पौराणिक इतिहास में यह कथा प्रसिद्ध है कि हिरणी का रूप धारण किये हुई एक

यक्षिणी के पीछे मनु के पुत्र महाराजा इल (सुद्युम्न) इस प्रदेश में गलती से प्रवेश कर गये और तुरन्त ही वे इल से 'इला' हो गये थे। बाद में कहा जाता है कि उनका चन्द्रमा के पुत्र बुध से विवाह हुआ। इस प्रकार "इला" और 'बुध' की संतानें एल वंशीय क्षत्रियों के नाम से विख्यात हुई। तभी से इस वर्ष का नाम "इलावृत-वर्ष" पड़ा। अन्तर्कथा का मंतव्य चाहे जो कुछ भी रहा हो पर अवश्य ही कहीं पर इलावृत-वर्ष तो होना ही चाहिए।

**(७) भद्रपीठ-देश उनका स्थान :—**

अत्यन्त गूढ़ ढंग से अलंकारिक भाषा में भगवान विष्णु की पूजा बताते हुए उनका स्थान **'भद्रपीठ देश'** बताया गया है। इस भद्रपीठ को पृथ्वी रूपी अष्टदल कमल की कर्णिका पर बताया गया है। कल्कि-पुराण तृतीयांश १७वें अध्याय का यह २४वां श्लोक देखिये :—

**स्नापयित्वा भद्रपीठे कर्णिकायां प्रपूजयेत्।**
**पंचभिर्दशभिर्वापि षोडशैरूप चारकैः ॥२४॥**

**अर्थ**—भद्रपीठ में कर्णिका पर स्थापित करके सोलह, पन्द्रह तथा दस उपचारों से उनका पूजन किया गया।

उपरोक्त वर्णन रूपक शैली में जम्बू द्वीप का ही है। जिसके अष्ट खण्डों को अष्टदल कमल की संज्ञा दी गई है तथा उसकी कर्णिका (केशर) को सुमेरू पर्वत बताया गया है, जो गोलाकार या अर्द्धचन्द्राकार आकृति को होती है। इन्हीं आठ खण्डों का १४ भुवनों में भी विभाजन बताया गया है। इसी कर्णिका रूपी सुमेरु-शृखला के ठीक नीचे यह भद्रपीठ-देश बताया गया है।

यह भी इस देश के नाम का फारसी अथवा हिन्दी भाषा में शब्दार्थ है।

भद्रपीठ का शब्दाथ करने पर यह ज्ञात होता है :—

भद्र=सज्जन, श्रेष्ठ अर्थात् आर्य
पीठ=निवास, स्थान अर्थात् अयन

तो इस शब्द का अर्थ आर्यों का अयन, एर्य्यान अथवा ईरान देश ही होता है।

(८) अग्निदेश उनका आश्रय-स्थल होगा :—

कल्कि-पुराण तृतीयांश छटवें अध्याय में उनका स्थान 'अग्नि-देश' भी बताया गया है।

सप्तस्वराश्यो भूदेव सारथिर्वह्निराश्रयः।
क्रियाभेद बलोपेतः प्रययौ धर्मनायकः ॥३१॥

अर्थ—वेद के सात स्वर उसके रथ के अश्व, भूदेव सारथि और अग्नि उनका आश्रय स्थल हुआ। इस प्रकार धर्म रूपी नायक ने अनेक प्रकार के क्रियानुष्ठान रूप बड़े बल से युक्त होकर यह प्रयाण (विजय-यात्रा) किया।

सब धर्मों की एकता का एक अत्यन्त प्रबल प्रमाण इस श्लोक से ज्ञात होता है। एक बड़े सुन्दर रूपक के माध्यम से इसमें वेदों या ईश्वरीय ज्ञान को जो इस पृथ्वी पर सप्तगंगा या सात धर्मों के रूप में प्रकट हुए हैं, उस धर्म रूपी सेनानायक के रथ के साथ अश्व बताया गया है भूदेव (पृथ्वी के देवता भगवान विष्णु) उस रथ को चलाने वाले तथा वह्नि अर्थात

**'अग्नि-देश''** उनका निवास स्थान हुआ। इस प्रकार धर्म ने समस्त भूमण्डल को विजय करने के लिए अनेक क्रियाओं से युक्त होकर विजय यात्रा की।

उपरोक्त अग्निदेश से तात्पर्य अग्निपूजकों के देश या पारस-देश से ही है। यह ईरान देश या पारस-देश ही पवित्र करने वाली अग्नि का देश इतिहास में प्रसिद्ध है। आजकल इसे परसिया (Persia) देश भी कहते हैं। भारत वर्ष में रहने वाले अग्नि पूजक पारसी धर्मावलम्बी मूलतः इसी देश के निवासी हैं जिनको अपने देश में विधर्मियों के प्रवल आक्रमण के कारण भागकर इस देश में शरण लेनी पड़ी।

(९) **कल्कि के प्राकट्य स्थल पर 'अखण्ड-ज्योति :—**

(क) एक और गूढ़ संकेत हमें यह प्राप्त होता है कि कल्कि-अवतार के प्रकट होने के स्थान पर एक सदैव प्रकाशित होनेवाली 'अखण्ड-ज्योति' जलती रहती है। इस अखण्ड ज्योति का वर्णन कई पुराणों में तो पाया ही जाता है पर कई संतों की वणियों में भी इसका वर्णन गूढ़ रूप से पाया जाता है। इसे गहराई से समझने की आवश्यकता है। कल्कि-पुराण तृतीयांश के सत्रहवे अध्याय के ३४ वें श्लोक में महर्षि व्यास जी ने यह किस दीपक पर नेत्रों का संचार करने को कहा है?

**भक्तानां गेहं शक्तानां संसार ध्वान्तनशनम्।**
**दीपमालोकय विभो! जगदालोक नादर॥ ३४॥**

**अर्थ**—हे भगवान तुम संसार विलासी भक्तों के संसारी अन्धकार को दूर करने वाले हो। तुम समस्त संसार को आदर

सहित आलोकित कर रहे हो इस दीपक पर नेत्रों का संचार करो ।

(ख) शिवपुराण की विद्येश्वर संहिता में भगवान शंकर के एक निष्कल, आदि अन्त रहित **"अग्नि स्तम्भ"** का शिव-रात्रि के दिन प्राकट्य बताया गया है। इसी आधार पर भगवान शंकर' के शिवलिंगों को ज्योतिर्लिंग कहा गया है। स्वयं भगवान शंकर इस साक्षात ज्योति स्वरूप अपने निष्कलंलिंग के विषय में इसी सन्दर्भ में क्या कहते हैं इस पर जरा ध्यान दीजिए।

"यहां पर मैं लिंगरूप से प्रकट होकर बहुत बड़ा हो गया था। अतः उस लिंग के कारण यह भूतल 'लिंगस्थान' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जगत के लोग इसका दर्शन और पूजन कर सकें, इसके लिए यह अनादि और अनन्त **ज्योतिः स्तम्भ** अथवा ज्योतिर्मयलिंग अत्यन्त छोटा हो जायेगा। यह लिंग सब प्रकार के भोग सुलभ कराने वाला तथा भोग और मोक्ष का एकमात्र साधन है। इसका दर्शन, स्पर्श और ध्यान किया जाय तो यह प्राणियों को जन्म और मृत्यु के कष्ट से छुड़ाने वाला है। **अग्नि के पहाड़** जैसा जो यह शिवलिंग यहां प्रकट हुआ है, इसके कारण यह स्थान 'अरुणाचल' नाम से प्रसिद्ध होगा। **यहां अनेक प्रकार के तीर्थ प्रकट होंगे।** इस स्थान में निवास करने या मरने से जीवों का मोक्ष तक हो जाएगा।"

(ग) मत्स्य पुराण के अध्याय ११८ के छठवें श्लोक में भी इसी अखण्ड ज्योति का वर्णन प्राप्त होता है।

तदापि दिवसाकारं प्रकाशं तदहर्निशम् ।

अर्थ—वहां पर भी दिवस के आकार का निरन्तर प्रकाश होता रहता है।

(घ) स्वामी चरण दास जी भी इसी ज्योति के विषय में लिखते हैं।

चन्द षोडस दिपैं गंग उलटी 'बहैं सुषमना सेज पर लम्प दमकै।
तासु के ऊपरैं अभी का ताल है झिलमिली ज्योति परकाश झमकै।
चारि योजन परैं शून्य अस्थान है तेज अति शून्य परलोक राजै।
द्वार पश्चिम घंसे मेर ही दण्ड हो उलटि कर आय छाजै विराजै।
नूर जगमग करै खेल अगाध है वेद हू कहे नहिं पा पावै।
गुरुमुखी जाय है अमर पद पाय हैं शीश का लोभ तजि
पन्थ धावै ॥

एक अन्य स्थान पर वे यह लिखते हैं।

सो गुरु बिन वह घर कौन दिखावै।
जिहि घर अग्नि जलै जलमाही यह अचरज दरशावै
॥ १३६ ॥

दरश ज्योति परम सुख पायो सब ही कर्म जलावै।
पाप पुण्य दोऊ में नाहीं जन्म मरण विसरावै ॥ १३७ ॥

(ङ) इसी ज्योति के विषय में संत तुलसीदास जी जैन कबि बनारसीदास को जो उनके ही समकालीन थे, यह लिखते हैं—

पद जलज भगवान जू के बसत हैं उर माँहि।
चंहुगति बिहंडन तरनतारन देख विघन बिलांहि॥

थकि धरनिपति नहिं पार पावत नरसु वपुरा कौन।
तिहि लसत करुनाजन पयोघर भर्जहिं भवजन तौन ।।
दुति उदित त्रिभुवन मध्य सूबन जलधि ज्ञान गम्भीर।
जिहि भाल ऊपर क्षत्र सोहत दहत दोष अधीर ।।
जिहि 'नाथ पारस'' जुगल पंकज चित्त चरनन जास।
रिद्धि सिद्धि कमला अजर राजित भजत तुलसीदास ।।

अर्थ—सन्त तुलसीदास जो कहते हैं :—

''भगवान के चरण कमल मेरे उर में निवास करते हैं अर्थात मेरे अन्त: करण में सदा उनका ही ध्यान रहता है । वे ही संसार की चंहुमुखी गति के कर्त्ता तथा उसकी नौका के तारण-हार हैं जिनका दर्शन पाकर ही समस्त विघ्न बाधायें नष्ट हो जाती हैं। उनकी गति को तो इस पृथ्वी के स्वामी बड़े बड़े सम्राट भी नहीं पा सकते फिर बेचारे मनुष्य की तो सामर्थ्य ही क्या है। वे करुणा के सागर (द्विज दयाल) जिन्हें समस्त संसार के लोग भजते हैं वे जहाँ शोभित हो रहे हैं वहां त्रिभुवन के मध्य एक द्युति (ज्योति) प्रकट होकर शोभायमान हो रही हैं जहां ज्ञान रूपी गम्भीर सागर शोभित हो रहा हैं। जिनके मस्तक पर क्षत्र शोभायमान हो रहा है वे अधैर्य रूपी दोष को भस्म करने वाले हैं । उन्हीं पारस '(फारस) देश के नाथ' के दोनों चरणकमलो को जहां रिद्धि. सिद्धि, लक्ष्मी तथा अमरत्व रहते हैं, मैं तुलसीदास भजता हूं।

(च) स्वामी चरणदास जी एक स्थान पर लिखते हैं—

निराकार तो ब्रह्म है माया है आकार।
दोनों पदवी कोलिए ऐसा पुरुष निहार ।।

आगे शब्द वर्णन के अन्तर्गत उन्हीं निराकार ब्रह्म के साकार रूप अवतार का वर्णन करते हुए उसका स्थान इसी अखण्ड-ज्योति के समीप बताते हुए कहते हैं :—

**इन नैनन निराकार लहा ।**
**कहन सुनन की कौन पतीजै जान अजान व्है सहज रहा ।।**
**जित देखो तित अलख निरन्जन अमर अडोल अबोल महा ।**
**ज्योति जगत बिच झिलमिल झलकै अगम अगोचर पूरि रहा ।।**
**अलख लखा जब बेगम हुवा भर्म कोट जब तुरत ढहा ।**
**सर्वमयी सब ऊपर राजै शून्य स्वरूपी ठोस ठहा ।**
**जीवन मुक्त भया मन मेरा निर्भय निर्गुण ज्ञान महा ।**
**गुरू शुकदेव करी जब किरपा चरणदास सुख 'सिद्ध बहा' ।। २५० ।।**

**अर्थ**—इन आंखों ने उस निराकार को पाया । यह बात कहने सुनने की नहीं है क्योंकि न जाना जा सकने वाला मेरे द्वारा सहज ही जान लिया गया । जिधर भी देखते हैं उधर ही वह **'अलख निरंजन'**, जो अमर है , स्थिर तथा मौन है, दिखाई दे रहा है । जहां संसार के बीचों बीच में **अखण्ड-ज्योति** प्रकाशित हो रही है वहीं वह न जानने तथा न दिखाई देने वाला पूर्ण होकर प्रकट हो रहा है । मैंने उस अदृश्य को देखा जब मैं स्त्री हुआ (अर्थात पार्वती जी के शापित स्थान उमावन में ज्योति-स्थल शिखर के पास जाने पर स्त्री हो जाता है) तब मेरे भ्रम का किला तुरन्त ढह गया । वह सर्वमयी जिसे शून्य स्वरूपी

कहा जाता है, इस स्थान पर साकार रूप से स्थित हो रहा है उसके महान ज्ञान से जो निर्गुण ईश्वर का है, मेरा मन निर्भय और जीवन मुक्त हो गया। मेरे गुरू शुकदेव ने जब मुझ पर कृपा की तो मुझ चरणदास को इन '**सिद्ध ब्रह्म**' के दर्शनों का सुख प्राप्त कराया।

(द) इसी 'अखन्ड-ज्योति' के सम्बन्ध में महात्मा गरीबदास जी का यह कथन देखिये :—

**दखिन देश में दीपक जोहूं उत्तर धरूं धियाना।**
**पश्चिम देश में देवल हमरा पूरब पन्थ पयाना॥**

यहां पर भी पश्चिम देश में देवताओं का स्थान और उत्तर दिशा की ओर संकेत किया गया है जहां पर भगवान कल्कि का प्राकट्य हुआ और जिनके पंथ ने पूर्व दिशा की ओर प्रयाण किया।

(ज) संत तुलसीदास जी ने अपने प्रसिद्ध लोकप्रिय ग्रंथ रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में दोहा नं० १२० (क) के अन्तर्गत निम्न चौपाईयों में इसी परम प्रकाश अर्थात अखण्ड-ज्योति का वर्णन किया है इसे उन्होंने 'भक्ति-मणि' का नाम दिया है —

**कहेउ ज्ञान सिद्धान्त बुझाई।**
**सुनहु भगति मनि के प्रभु ताई॥**
**राम भगति चिन्तामनि सुन्दर।**
**बसई गरुड़ जाके उर अन्तर॥**
**परम प्रकाश रूपदिन राती।**
**नहीं कछु चहिअ दिया घृत बाती॥**

मोह दरिद्र निकट नहिं आवा ।
लोभ बात नहिं ताहि बुझावा ।।
प्रबल अविद्या तम मिटि जाई ।
हारहिं सकल सलभ समुदाई ।।

खलकामादि निकट नहिं जाई ।
बसइ 'भगति आके' उर माहीं ।
गरल सुधा सम अरि हित होई ।
तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई ।।
ब्यापहिं मानस रोग न भारी ।
जिन्ह के बस सब जीव दुखारी ।।
राम भगति मनि उर बस जाकें ।
दुख लवलेश न सपनेहु ताकें ।।
चतुर शिरोमणि तेहि जगमाहीं ।
जे मनि लागि सुजतन कराहीं ।।
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई ।
राम कृपा बिनु कोउ नहिं लहई ।।
सुगम उपाय पाइबे केरे ।
नर हतभाग्य देहिं भटमेरे ।।
पावन पर्वत वेद पुराना ।
राम कथा रुचिराकर नाना ।।
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी ।
ग्यान विराग नयन उरगारी ।।
भाव सहित खोजइ जो प्रानी ।
पाव भगति मनि सब सुख खानी ।।
मोरे मन प्रभु अस विश्वासा ।
राम ते अधिक राम कर दासा ।।

राम सिंधु घन सज्जन धीरा।
चंदन तरु हरि संत समीरा॥
सबकर फल हरि भगति सुहाई।
सो बिनु संत न काहू पाई॥
अस विचारि जोइ कर सतसंगा।
राम भगति तेहि सुलभ विहंगा॥

दो०—ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं।
कथा सुधा मथि काढ़हि भगति मधुरता जाहिं॥ (क)
बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस विचारि॥१२०॥(ख)

अर्थ—संत तुलसी दास जी कहते हैं-कागभुषुण्डि और गरुड़ के वार्तालाप में कागभुषुण्डि जी गरुड़ से कहते हैं "अभी मैंने आपसे ज्ञान का सिद्धान्त कहा है अब मैं भक्ति-मणि की प्रभुता कहता हूं । सुनो। भगवान राम के इस नवीन अवतार की चिन्ता को हरण करने वाली सुन्दर भक्ति-मणि जिसके हृदय में बसती है, दूसरा गूढ़ार्थ यह भी है कि जिसके बीचों बीच गरुड़ का निवास है अर्थात जहां पर यह अखण्ड-ज्योति प्रज्वल्लित है वहां ही गरुड़ का निवास है। वहां पर एक परम प्रकाश' दिन रात शोभित हो रहा है। इस सदैव जलते रहनें वाली ज्योति को न तो दीपक की आवश्यकता है न घृत की और न ही बत्ती की। उस प्रकाश के समीप मोह ओर दरिद्रता कभी नहीं जाते ओर न उसे लोभ रूपी वायु बुझा सकती है। उसके समीप जाने से प्रवल अविद्या रूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है। उस प्रकाश को बुझाने में समस्त शलभ (पतंगें) थक जाते हैं पर बुझा नहीं पाते। उस ज्योति के निकट खल और काम नहीं जा सकते। जिसके भी हृदय में वह भक्तिमणि

बसती है उसी को विष अमृत के समान तथा शत्रु का हित भी प्रिय हो जाता है। इस भक्ति मणि के बिना कोई सुख प्राप्त नहीं कर सकता। सभी जीव जिन मानस रोगों से पीड़ित हैं उनको इस भक्ति-मणि के ज्ञान प्राप्त कर लेने पर वे नहीं व्यापते। यह भक्ति-मणि जिनके हृदय में निवास करती है उसे सपने में भी दुःख शेष नहीं रहता।"

इस भक्तिमणि को केवल भक्ति ही न समझ लें अतः तुलसीदास जी आगे यह संकेत कागभुषुण्डि जी से कहलाते हैं-"इस संसार में वे ही मनुष्य चतुर और शिरोमणि (समाज के अग्रणी व मान्य) हैं जो इस मणि को प्राप्त करने के विशेष रूप से यत्न करेंगे। यहां इस संकेत को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं :—

**यद्यपि वह 'भक्ति-मणि' इस संसार के बीच में प्रकट है पर राम की कृपा के बिना इसे कोई भी प्राप्त नहीं कर सकेगा इसे पाने को लोग बहुत से सरल उपाय करेंगे। हतभागी मनुष्य बहुत भटकेगें और चक्कर खायेगें। वेद और पुराणों में में जिस पवित्र पर्वत का वर्णन किया गया है (अर्थात सुमेरु गिरि) वहीं नाना प्रकार से सुन्दर यह लीला हो रही है।"**

"हे गरुड़। इसका रहस्य (मर्म) जानने वाले सज्जन अपनी बुद्धि रूपी कुदाल से खोदकर ज्ञान और विरागरूपी नयनों को खोलकर अर्थात राग द्वेष (पक्षपात) से दूर रहकर भावना के साथ जो प्राणी खोज करेगें, उन्हीं को यह सब सुखों की खान भक्तिमणि प्राप्त होगी।"

फिर आगे कागभुषुण्डि जी कहते हैं—"हे गरुड़ मेरे मन में ऐसा विश्वास है कि भगवान राम से अधिक राम का दास है

(राम का सेवक यहां ऐसा प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति विशेष की ओर इशारा किया गया है जिसको खोजना होगा) भगवान राम को कोई सीधे ही प्राप्त नहीं कर सकता वे तो सिन्धु (सागर) के समान हैं जिनको सभी लोग प्राप्त नहीं कर पाते। धीर सज्जन रूपी बादल ही समुद्र से उतरकर हमारे पास बरसने के लिए आते हैं। इसी प्रकार हरि (विष्णु) रूपी चन्दन का वृक्ष भी स्वयं हमारे पास नहीं आता जब संत रूपी वायु उनका स्पर्श करते हुए उसकी सुगन्ध को हमारे पास लाती है तभी उसके अस्तित्व का पता लगता है। उपरोक्त समस्त कथा का फल केवल हरि-भक्ति प्राप्त करना है जो शोभित होते हुए भी बिना संतों के किसी को प्राप्त नही हो सकती। ऐसा विचार करके जो सत्संग करेंगे उन्हीं मनुष्यों को यह भक्ति-मणि प्राप्त होगी।'

"जहां ब्रह्मा का स्थान क्षीर सागर (मीठे पानी का सागर) कास्पियन सागर है, जहां सुमेरु का सर्वोच्च शिखर 'मन्दराचल' हैं, वहीं ज्ञानीं संत और देवतागण आयेंगे और उपरोक्त कथा रूपी क्षीर सागर का मन्थन करके इससे भक्ति रूपी मीठा अमृत प्राप्त करेंगे।।"

"यह हरि-भक्ति चर्म की तलवार अर्थात जिव्हा (बचनों) द्वारा प्रकट किये हुए ज्ञान और सत्य से अहंकार, लोभ और मोह रूपी शत्रुओं को मारती है वही हरि-भक्ति समस्त संसार पर जय प्राप्त करेगी। इस बात पर हे गरुड़ विचार करके देखिये।"

पाठकों को यह स्मरण रखना चाहिए कि कल्कि-अवतार के हाथ में जो दो धार वाली चमड़े की तलवार बताई गई है वह

अन्य कुछ नहीं जिव्हा (जीभ) के लिए कहा गया है जिसे कहीं कहीं ज्ञान-खंग भी कहा गया है। इसकी दो धारें, सत्य तथा ज्ञान की कही गई हैं। इस पूरे वर्णन से यह बिलकुल ही स्पष्ट हो जाता है कि यहां पर और कुछ नहीं हरि के अवतार की ही चर्चा है।

उपरोक्त पृष्ठों में हमने विस्तृत रूप से उन भविष्यवाणियों पर विचार किया है जो बड़े गूढ़ ढंग से कल्कि-अवतार के प्राकट्य पर एक सदैव प्रकाशित रहने वाली अखण्ड-ज्योति की ओर इगित करती हैं। अब आइए हम ईरान के इतिहास में इस स्थान विशेष की खोज करके देखें कि क्या वहां सचमुच ही ऐसा कोई स्थान है जहां पर यह अखण्ड-ज्योति प्रकाशित होती रहती है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री इस स्थान को "अजरबैजान" में बताते हैं जो ईरान और रूस का सीमान्त प्रदेश है इसी स्थान को ईरान का स्वर्ग (द्वितीय बैकुण्ठ) कहा गया है। सत्यलोक (Sattagydia) या सत्यगद्दी के सम्मुख सुमेर प्रान्त (सुमेरियन जाति के मूल स्थान) के निकट यह स्थान है। इसी भूमि को तपोभूमि भी कहते थे। यहां रात दिन प्रकाश रहता है। संसार में ईरान का यह प्रदेश ही तपूरिया प्रान्त कहलाता है जिसे पुराणों में तपोभूमि कहा गया है। यह स्थान देमावन्द पर्वत के अंचल में है। यहां रात दिन प्रकाश रहता है। पुराणों का कथन है कि यह भूमि कामनाओं को पूरा करने वाली अर्थात् कामधेनु थी।"

इस सम्बन्ध में पर्शिया का इतिहास क्या कहता है :—

"The Iranian Paradise—This mysterious mountain rises from the earth above the stars

into the sphere of endless light to the paradise of Ahura Mazda (Abode of song) It is the mother of the mountains (The Damavand) with its summit bathed in everlasting glory, where there is no night, no sickness. The summit is touched with the flames."

(History of Persia Vol. I page 117)

एक अन्य स्थान पर यह लिखा है :—

"Tapuria or Mazandaran where Tapurite lived under Damavand"

(History of Persia Vol. I page 284)

अनुवाद—"ईरानी स्वर्ग" यह रहस्यमय पर्वत पृथ्वी से आकाश तक जहां अनन्त प्रकाश का वृत फैला है जो अहुरा मज्दा के स्वर्ग तक है, निकलता है। यह सभी पर्वतों की माता (दमावन्द) है जिसका शिखर अनन्त प्रकाश से देदीप्यमान रहता है। जहां कभी रात्रि नहीं होती न कोई रोग होता है। शिखर को अग्निशिखा स्पर्श करती रहती है।

"तपूरियन अथवा माजिन्दरान (महेन्द्रायण) जहां देमावन्द पर्वत के नीचे तपूरियन लोग रहते थे।"

यह रहस्यमय स्थान पृथ्वी पर अन्यत्र कहीं नहीं है। क्या हमारे इतिहासकार तथा पौराणिक विद्वान् खोज करके इसके लुप्त इतिहास का पता लगाने का अत्यन्त महत्वपूर्ण और आवश्यक कार्य करने की चेष्टा करेंगे? पुराणों तथा सन्तों के कथनों में इस परम पवित्र स्थान का रहस्य छिपा पड़ा है जिसे

हम मात्र कपोल कल्पित कथायें कहकर अधिक दिन तक नहीं टाल सकते। पुराणों से पता लगाकर इन स्थानों के प्राचीनतम इतिहास के उद्धार की इस समय परम आवश्यकता है। इससे सबसे बड़ा लाभ इस भूमि और वहां के निवासियों से टूटी हुई सांस्कृतिक कड़ी का जुड़ना होगा जिससे उनके साथ एक अटूट सांस्कृतिक तथा धार्मिक एकता की पृष्ठभूमि का निर्माण होगा। क्या विश्व के समस्त मानवों की अखण्ड एकता की स्थापना में योगदान का यह महान कार्य करना भारतीय विद्वानों तथा इतिहासकारों का कर्तव्य नहीं है ? ऐसा न भी हो तो भी कम से कम पुराणों में वर्णित बहुत से रहस्यपूर्ण स्थानों का पता तो लगाना ही होगा। वर्तमान इतिहासकार तथा विद्वान इसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते रहें किन्तु आगामी पीढ़ियां इसके महत्व का मूल्यांकन करके अवश्य ही इसकी खोज करेंगी।

(१०) **शम्भल ग्राम नगरी का कल्कि-पुराण में वर्णन :—**

श्रीमद्भागवत पुराण में (१२।२।१८) में शम्भल ग्राम लिखा है परन्तु कहीं पर यह नगर भी लिखा है। कल्कि-पुराण में "शम्भल-ग्राम-नगरी" का वर्णन भी दिया हुआ है। देखिये कल्कि-पुराण द्वितीयांश का छटवां अध्याय :—

**शम्भल ग्राम नगरी, पताका ध्वजशालिनी।**
**अवरोध सुजघना, प्रासाद विपुल स्तनी॥**
**मयूर चूचका हंस संघ हार मनोहरा॥ ३०॥**

**पटवासोद्योत धूम्र वसना कोकिल स्वना।**
**सहासगोपुरमुखी वामनेत्रा यथांगना।**
**कल्किं पतिं गुणवती प्राप्य रेजे तमीश्वरम्॥ ३१॥**

अर्थ—'शम्भल-ग्राम-नगरी' में पताकायें तथा ध्वज फहरा रहे हैं। इस नगरी के विभिन्न रूपों की एक स्त्री के शरीर के अंगों से तुलना की गई है। इस नगरी के चारों ओर अवरोध (चहारदीवारी) है। इस दीवार में बीच-बीच में गोल बुर्जियां हैं जो इस प्रकार शोभित हो रही हैं जैसे एक स्त्री की सुडौल बेलनाकार जंघायें। इसमें जो प्रासाद (महल) हैं उनका आकार इस प्रकार गुम्बदाकार है जैसे किसी स्त्री का सुडौल स्तन। इन गुम्बदों का अग्रभाग ऐसा है जैसे मोर की चोंच। इससे यह स्पष्ट होता है कि गुम्बदाकार छतों के बीच में कलश के स्थान पर जो वस्तु है वह नीचे से मोटी और ऊपर नुकीली हो गई है। इस प्रकार के महलों के चारों ओर ऐसी आकृति की श्वेत मीनारें हैं मानो श्वेत हंसों के समूह अपनी गरदन ऊंची करके इन महलों के चारों ओर खड़े हों। इस नगरी में कपड़े के बने निवास स्थान (पटवास) डेरे तम्बू भी शोभित हो रहे हैं जिनमें धूम्र (काले) के रंग के वस्त्रों वाली कोकिल कण्ठी स्त्रियां रह रही हैं। इस नगरी का द्वार गाय के मुख जैसा महराबदार है। इस द्वार के ऊपर जो वर्गाकार कंगूरे लगे हैं वे इस प्रकार शोभित हो रहे हैं जैसे किसी सुन्दर हंसती हुई नारी की श्वेत दंतावलि। इस नगरी का आकार नेत्र की भांति एक ओर से गोलाकार तथा दूसरी ओर से कोणाकार स्त्री के बायें नेत्र की भांति है।

भविष्यदृष्टा महर्षि व्यास ने इस ग्राम का भविष्य दर्शन आज से हजारों वर्ष पूर्व किया है। अतः इस नगर का वर्णन उस समय की वर्णन शैली पर आधारित है। उनके इस वर्णन से यह पता लगता है कि इस नगरी के चारों ओर शहरपनाह है जिसमें जगह-जगह पर गोल बुर्जियां बनाई गई हैं। इसमें

सफेद रंग की पतली-पतली लम्बी मीनारों से घिरे हुए गुम्बदाकार महल हैं। कहीं-कहीं खानाबदोश जातियों के निवास स्थान कपड़े के डेरे तम्बू भी पड़े हैं जिनमें काले रंग के बुरके पहनने वाली कोकिलकठी सुन्दर स्त्रियां निवास कर रही हैं। गाय के मुख जैसा चौड़ा तथा खुला महराबदार द्वार तथा उसके ऊपर चौकोर आयताकार कंगूरे। पाठक विचार करके देखें कि इस प्रकार का नगर क्या भारतीय संस्कृति के अनुकूल भारतवर्ष में हो सकता है? यह नगर कभी भारतवर्ष का नहीं हो सकता। इस प्रकार का नगर या कस्बा तो ईरान में ही सम्भव है। जिन श्वेत गुम्बदाकार महलों तथा मीनारों का वर्णन किया गया है उनका वर्णन मस्जिदों से मिलता जुलता है।

उपरोक्त कुछ महत्वपूर्ण प्रमार्ण हमने कल्कि-अवतार के स्थान के विषय में दिये हैं ये स्थान भारतवर्ष के पश्चिम की ओर एशिया के समस्त देशों के बीच बसे इलावृत वर्ष और वर्तमान में ईरान की राजधानी तिहरान की ओर ही इंगित करते हैं। कागभुषुण्डि जी ने भारतवर्ष से बाहर विदेश में इसी स्थान में गमन किया और उनके दर्शन किए। भविष्य वार्त्ता के रूप में इसी स्थान का वर्णन उत्तर-काण्ड में किया गया है। देखिये राम चरितमानस उत्तरकाण्ड का दोहा संख्या १०४।

**तब कलिकाल बरस बहु बसेउ अवध बिहगेस।**
**परेउ दुकाल विपत्तिवस तब मैं गयउ विदेश॥१०४॥**

**अर्थ**—कागभुषुण्डि जी कहते हैं कि हे गरुड़! मैं तब कलियुग के बहुत से बरसों तक अवध में निवास करता रहा और

जब वहां दुष्काल हुआ तब विपत्ति का मारा मैं विदेश चला गया ।

इसी प्रकार कल्कि-पुराण के द्वितीय अध्याय के ४४वें श्लोक में पुत्र कल्कि जी जब अपने पिता से उपरोक्त देश में बात करते हुए यह पूछते रहते हैं "जो ब्राह्मण संपूर्ण जगत को उद्धार करता है, जो ब्राह्मण साधु मार्ग में चलकर हरि भगवान को प्रसन्न करता है, जो ब्राह्मण यमलोक के मनोरथ को पूर्ण करता है, वह ब्राह्मण कहां है ?

इस पर उनके पिताजी निम्न उत्तर देते हैं—

**कलिना बलिना धर्म्म घातिना द्विज पातिना ।**
**निराकृता धर्म्मरता गता वर्षान्तरान्तरम् ।। ४५ ।।**

**अर्थ**—धर्म घातक, द्विज हिंसक, बलवान कलि के अत्याचार से पीड़ित होकर धर्मात्मा ब्राह्मण दूसरे वर्ष को चले गये ।

पाठक यहां विचार करें कि यदि यह वार्तालाप भारतवर्ष में ही हो रहा होता तो यहां से कोई भी ब्राह्मण चाहे उन्हें जितने भी कष्ट या दुःख क्यों न उठाने पड़े हों अधर्म और अत्याचार से पीड़ित होकर अन्य किसी भी वर्ष में नहीं गए । हां ईरान के आर्य ब्राह्मणों, अग्नि व सूर्य के पूजकों पारसियों को मुस्लिम आक्रमणकारियों के प्रबल अत्याचारों से पीड़ित होकर वह वर्ष छोड़कर भारतवर्ष आना पड़ा था । पर उनमें से कुछ ब्राह्मण वंश सुदूर पर्वतों में रहते रहे उन्हीं में पारसियों के ईश्वरीय अवतार जरथोस्त (जरदुस्त्र) के वंशज भी थे ।

इन्हीं के पवित्र वंश में आगे चलकर ईश्वरीय-अवतार ने जन्म लिया ।

## राम चरित मानस में कल्कि-अवतार की भविष्य वाणियाँ

समस्त भारतवर्ष के हिन्दुओं का सबसे अधिक लोकप्रिय ग्रंथ महाकवि संत तुलसीदास जी का ग्रंथ रामचरितमानस है, तुलसीदास जी कलियुग में हुए । वे स्वयँ भी अनेकों दिव्यात्माओं से साक्षात्कार करते थे । हिमालय पर्वत के सुदूर दुर्गम तीर्थ-स्थलों की उन्होंने यात्रा की । महामुनि कागभुषुण्डि जी तथा महर्षि याज्ञवल्क्य जी के उन्हें दर्शन हुए । वे स्वयं भी भक्ति योगी थे अतः भविष्य दर्शन करने की उनमें शक्ति थी । उपरोक्त ऋषियों से वार्तालाप में उन्हें अवश्य ही कुछ गूढ़ रहस्यों का पता चला होगा जिनमें कलियुग को समाप्त करने वाले समस्त धर्मों के प्रतीक्षित "कल्कि-अवतार" का रहस्य भी होगा । इस रहस्य को कोटि-कोटि हिन्दुओं तक पहुंचाना उनका अभीष्ट था । वे भगवान राम के अनन्य उपासक थे । अतः उन्होंने यही उचित समझा कि भगवान राम की कथा का एक वृहद ग्रंथ रचा जाय जो जनता की भाषा में हो और साथ ही इस रहस्य को भी जन-जन तक पहुंचा दिया जाय । रामचरित मानस के विद्वानों से हम निवेदन करते हैं कि वे निम्न भविष्यवाणियों पर विचार करें तथा इस रहस्य को जनता को समझायें ।

तुलसीदास जी ने रामचरित मानस आरम्भ करते समय अनेकों देवताओं की स्तुति की है । सबसे प्रथम गणेश जी की स्तुति है और उनके बाद दूसरी स्तुति जिसे हम परमात्मा की

स्तुति ही समझते आये वह अन्य किसी की नहीं कलि के समस्त पापों को जलाने वाले भगवान कल्कि की ही स्तुति है।

**मूक होइ वाचाल, पंगु चढ़इ गिरिवर गहन।**
**जासु कृपा सो दयाल, द्रवउ सकल कलिमल दहन।।**

**अर्थ** :—जिसकी कृपा से मूक (न बोलने वाले) भी वाचाल (वक्ता) हो जाते हैं तथा असमर्थ व्यवित भी अत्यन्त दुष्तर कार्यों को पूरा कर लेते हैं। जिसकी कृपा से यह सम्भव हो सकता है वे ही समस्त कलियुग के पापों को जलाने वाले भगवान 'दयाल' हैं उनको मैं नमस्कार करता हूं।

अब तक हम दयाल शब्द का अर्थ दयालु ही करते आये हैं और अब तक कभी किसी ने इस बात पर सम्भवतः ध्यान भी नहीं दिया कि 'दयाल' नाम लिखकर तुलसीदास जी किसी व्यक्ति विशेष की ओर इंगित करना चाहते थे। हम सभी इसका गूढ़ मंतव्य समझने में असमर्थ ही रहते यदि तुलसीदास जी इस रहस्य को खोजने का संकेत उत्तरकाण्ड के अंत में न देते। रामचरित मानस का उपसंहार करते हुए जो छंद वे लिखते हैं उसमें वे लिखते हैं—

**सत पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरै।**
**दारुण अविद्या पंच जनित विकार श्री रघुवर हरै।।**

**अर्थ** :—इसमें सतपंच चौपाइयों को मनोहर जानकर जो मनुष्य हृदय में धारण करेंगे उनकी दारुण अविद्या और पंच भूत का जो शरीर है उसके द्वारा हुए पापों को भगवान रघुवर हर लेंगे।

इस 'सतपंच चौपाई' के अर्थ करते हुए विभिन्न टीकाकारों ने मनमानी अटकलें लगाई हैं। एक ही टीकाकार ने अपनी

टीका करते हुए तीन-तीन अर्थ एक साथ दिये हैं। कोई तो यह कहता है कि सात पांच चौपाइयां भी जो मनुष्य हृदय में धारण कर लेगा उनकी दारुण अविद्या और पंचजनित विकार भगवान हर लेंगे। किसी ने 'सत' का मंतव्य सातों काण्डों से लिया है पाठक चाहें तो इन विभिन्न टीकाकारों की टीकाओं का अवलोकन करके देख सकते हैं। तुलसीदास जी का मंतव्य तो कुछ और ही था जो बिलकुल सीधा-सादा था। वह यह था कि सतपंच लिखकर वे सत (शत)—१०० व पंच ५ अर्थात् १०५ के अंतर्गत जो चौपाइयां लिखी गई हैं उनको मनोहर जानकर जो मनुष्य अपने हृदय में धारण करेगा उस व्यक्ति की दारुण अविद्या और पंचभूत गठित शरीर से उत्पन्न समस्त विकारों को भगवान हर लेंगे।

आइए देखें उत्तरकाण्ड में दोहा नं० १०५ के अन्तर्गत वे कौन सी गूढ़ रहस्यमयी, मनोहारिणी चौपाइयां हैं (देखिये गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित रामचरित मानस) दोहा नं० १०४ (क) तथा १०४ (ख) से इस रहस्य की पृष्ठभूमि चलती है :—

दोहा—

**हरिमाया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।**
**भजिय राम तजि काम सब, अस बिचारि मनमाहिं।।१०४।क।**
**तेहि कलिकाल बरष बहु बसेउं अवध बिहगेस।**
**परेउ दुकाल बिपत्ति बस तब मैं गयउं बिदेस।।१०४।ख।**

**गयउं उजेनी सुनु उरगारी।**
**दीन मलीन दरिद्र दुखारी।।**
**गए काल कछु संपति पाई।**
**तहं पुनि करउं संभु सेवकाई।।**
**बिप्र एक बैदिक सिव पूजा।**

करइ सदा तेहि काजु न दूजा ।।
परम साधु परमारथ बिंदक ।
संभु उपासक नहिं हरि निंदक ।।
तेहि सेवउं मैं कपट समेता ।
द्विज दयाल अति नीति निकेता ।।
बाहिज नम्रदेखि मोहि साईं ।
विप्र पढ़ाव पुत्र की नाईं ।।
संभु मंत्र मोहि द्विजवर दीन्हा ।
शुभ उपदेश विविध विधि कीन्हा ।।
जपउ मंत्र सिव मंदिर जाई ।
हृदयं दंभ अहमिति अधिकाई ।।

दोहा—

मैं खलमल संकुल मति, नीच जाति बस मोह ।
हरिजन द्विज देखें जरउं करउं विष्णु कर द्रोह ।।१०५ क।।
गुर नित मोहि प्रबोध, दुखित देखि आचरन मम ।
मोहि उपजइ अति क्रोध, दंभिहि नीति की भावई ।।१०५ ।।

अर्थ :—कागभुषुण्डि जी गरुड़ से कहते हैं—"हरि की माया के वशीभूत होने से उत्पन्न हुए गुण दोष हैं, वे सब बिना हरि के भजन के नहीं जाते । ऐसा मन में विचार करके लोगों को समस्त कार्य छोड़कर भगवान राम का भजन करना चाहिए । हे गरुड़ ! मैं कलियुग के बहुत से बरसों तक अवध (अयोध्या) में रहता रहा । जब वहां दुष्काल (अकाल महामारी तथा अनाचार आदि) हुआ तो विदेश चला गया ।"

"हे गरुड़ ! सुनो मैं विदेश में उजेनी (उज्ज्वल-अयनी) अर्थात् 'पवित्र नगर' पहुंचा । यह नगर निर्धन, मलिन (म्लेच्छ)

दरिद्र और दुःख से कातर लोगों से बसा हुआ था। वहां जानें पर मुझे कुछ सम्पत्ति प्राप्त हुई। वहां फिर मैं भगवान शम्भु की सेवा करने लगा। वहां मैंने एक ब्राह्मण वैदिक ढग से शिव का पूजन करते देखा। वह सदैव यही पूजा-आराधना ही किया करता था इसके सिवाय उसे और कोई दूसरा कार्य नहीं था। वह विप्र सबसे बड़ा साधु तथा परमार्थ का रहस्य बताने वाला था। शम्भु का उपासक होते हुए भी वह भगवान विष्णु का निंदक नहीं था। कागभुषुण्डि जी कहते हैं कि हे गरुड़ ! मेरे मन में कपट था अतः उसको परम साधु तथा परमार्थ का निंदक जानते हुए भी मैं उस विप्र की सेवा में कपट रखता रहा। वे **'द्विजदयाल'** समस्त नीतियों को मन में धारण किये रहते थे अर्थात् उनके हृदय में समस्त नीतियों का निवास था। उन स्वामी ने मुझे बाहर से शिष्ट तथा नम्र देखकर मुझे अपने पुत्र की भांति मानकर पढ़ाया। उन द्विज श्रेष्ठ ने मुझे शम्भु का मंत्र दिया और विविध प्रकार के शुभ उपदेश किये। मैं शिव के मंदिर (अर्थात् शम्भल) में जाकर उस मंत्र का जप करता रहा पर मेरे हृदय में बहुत अधिक दंभ तथा अहंकार बना रहा।"

कागभुषुण्डि जी कहते हैं—कि मैं दुष्ट पापों से भरा, मोह के वशीभूत हुआ नीच जाति का था। मैं मन ही मन हरि के भक्तों, ब्राह्मणों, को देखकर जलता रहता था और स्वयं इस तरह **'भगवान विष्णु'** से ही द्रोह रखता था। गुरु मुझे नित्य ज्ञान देते थे और मेरा आचरण देखकर बड़े ही दुःखित थे। इस पर मुझे अत्यन्त क्रोध उत्पन्न होता था क्योंकि दंभी व्यक्ति को नीति की बात भला कहीं सुहाती है ?

उपरोक्त वार्तालाप में उन्हीं भगवान **'दयाल'** का द्विज-

दयाल के रूप में वर्णन है जिनकी रामचरित मानस (बाल काण्ड) के आरम्भ में स्तुति की गई है। निम्न मुख्य बिन्दु पाठकों के विचारार्थ उपस्थित हैं।

(क) कागभुषुण्डि जी सदैव जहां जहां विष्णु का अवतार होता है वहीं जाते हैं। दैवी प्रेरणा से वे कलियुग में भगवान राम की राजधानी अवध म रहते थे पर दुष्काल पड़ने पर, भारतवर्ष से बाहर के किसी देश में चले गये।

(ख) विदेश में जाकर वे 'उजेनी' (पवित्र अयनी) अर्थात तिहरान (ताहिर-आन) में पहुंचे। इस नगर के निवासी बड़ी दीन हीन दशा में मैले कुचैले (म्लेच्छ) दरिद्री तथा दुःखों से पीड़ित थे।

अब आगे उन्हीं के शब्दों में :—

(ग) कुछ सम्पत्ति प्राप्त करने के बाद मैं भी शम्भु की सेवा करने लगा।

(घ) वहां पर मैंने एक विप्र को शिव के निष्कल (निराकार) स्वरूप की वैदिक ढंग से आराधना करते देखा। उस विप्र को इसके सिवाय अन्य कोई कार्य नहीं था।

(ङ) वह विप्र अत्यन्त महान (परम) साधु था तथा परमार्थ मोक्ष का मार्ग बताने वाला था। वह विप्र शम्भु का उपासक होते हुए भी विष्णु का निंदक नहीं था।

(च) उस विप्र की मैंने कपट के साथ सेवा की यह जानते हुए भी कि वह बहुत बड़ा साधु तथा परमार्थ का विदक है। वे अन्य कोई नहीं **कलियुग के समस्त मलों को भस्म करने वाले द्विज-दयाल थे** जो बहुत ही महान नीतिज्ञ थे। सभी प्रकार की

नीतियां उनके हृदय में निवास करतीं थीं। (क्या कपट क्या एक विदेशी होने के कारण किया ?)

(छ) मुझ कागभुषुण्डि को बाहर से उन स्वामी ने **नम्र** देखकर अपने पुत्र की भांति पढ़ाया। भला कागभुषुण्डि जैसे दिव्य ज्ञानी को अपने पुत्र की भांति कौन पढ़ा सकता है ? अवश्य ही उनसे भी बहुत बड़ा ज्ञानी ही।

(ज) मुझे उन द्विज श्रेष्ठ ने भगवान शम्भु का मंत्र दिया और विविध प्रकार से मेरा कल्याण करने वाले उपदेश मुझे दिये। यद्यपि मैं शिव मन्दिर (शम्भल) में जाकर उस मंत्र का जाप करता रहा पर मुझ काग भुषुण्डि को अपने स्वयं के ज्ञान का दंभ तथा अहंकार था।

(झ) कागभुषुण्डि कहते हैं—मैं (देश, जाति, वंश तथा संस्कृति आदि के) मोह के वशीभूत हुआ दुष्ट पापी मति वाला नीच जाति का होने के कारण भगवान हरि के अनुयायी ब्राह्मणों (**क्या बहा के अनुयायी बहाइयों को ?**) को देखकर जलता था इस प्रकार मैं स्वयं 'विष्णु' से ही द्रोह कर रहा था।

(ञ) पर वे द्विज दयाल मेरे गुरु मुझे नित्य ही प्रबोध कराते थे और मेरा आचरण देखकर बड़े दुःखी थे। मुझे इस पर बड़ा भारी क्रोध उत्पन्न होता था भला दंभ करने वाले को नीति की बात कहां अच्छी लगती है ?

पाठक उपरोक्त तथ्यों पर गहराई से विचार करके निष्कर्ष निकालें कि कागभुषुण्डि जी ने विदेश में क्यों और किससे उपरोक्त वार्तालाप किया। ये 'द्विजदयाल' कौन हैं, जिनके विषय में

तुलसीदास जी अध्ययन करके इन चौपाईयों का मर्म समझने का अनुरोध करते हैं। रामचरितमानस के विद्वानों का क्या यह कर्त्तव्य नहीं कि वे इस पर गम्भीरता से विचार करके कलियुग के समस्त मत्नों को नष्ट करने वाले उन **परम साधु परमार्थ विदक नीतियों के निकेत 'भगवान द्विज दयाल'** का पता लगायें।

**विदेश में 'द्विजदयाल' का यह कौन सा स्थान ?**

उपरोक्त प्रसंग में यह प्रश्न उठते हैं कि कागभुषुण्डि जी कलियुग में बहुत वर्षों तक अवध में रहने के पश्चात, किस समय, किस देश में और किस स्थान पर गये ? उपरोक्त चौपाइयों में मात्र 'उजेनी' लिखा हुआ है जो किसी नगर का नाम है। जहां के लोग अत्यन्त दीन-दरिद्री मलिन तथा दुःख से त्रस्त हैं। आगे कुछ नहीं लिखा गया है। इस सम्बन्ध में हमें रामचरित मानस से ही पता लगाना होगा कि कागभुषुण्डि जी का गरुड़ से यह वार्तालाप आखिर कहां हो रहा है ?

उत्तर काण्ड दोहा नं० ११३ (ख) के नीचे की चौपाइयों में कागभुषुण्डि जी पक्षिराज गरुड़ से यह कहते हैं :—

**इहां बसत मोहि सुनु खगईसा। बीते कलप सात अरु बीसा ।।**
**करहुं सदा रघुपति गुन गाना। सादर सुनहिं बिहंग सुजाना ।।**
**जब जब अवधपुरी रघुवीरा। धरहिं भगति हित मनुज शरीरा ।।**
**तब तब जाइ रामपुर रहऊं। सिसुलीला विलोकि सुख लहऊं ।।**

**अर्थ** :—हे पक्षिराज गरुड़। मुझे इस प्रदेश में बसते हुए २७ कल्प हो गए। यहां आकर मैं सदैव रघुपति का गान करता हूं तथा हे सुजान पक्षी मैं उनकी कथा को सादर सुनता हूं।

जब जब रघुवीर अवधपुरी में भक्ति के लिए मनुष्य शरीर धारण करते हैं तब तब मैं जाकर 'राम के पुर' में रहता हूं और उनकी शिशुलीला को देखकर सुख प्राप्त करता हूं।

इसी हेतु कागभुषुण्डि जी त्रेतायुग में भगवान राम की लीला देखने अयोध्या में रहे, ये सबको विदित ही है फिर द्वापर युग में भगवान कृष्ण की लीला देखने वृन्दावन (मथुरा) में आये, ऐसा कथाओं से पता लगता है। अब कलियुग आया तो कलियुग के भगवान राम का अवतार देखने भी उनको अवश्य ही जाना है, ऐसा निम्न चौपाइयों से ज्ञात होता है—

**अवधपुरी प्रति भुवन निनारी। भिन्न भिन्न सरयू नरनारीं।।**
**प्रति ब्रह्माण्ड राम अवतारा। देखउं बाल विनोद अपारा।।**

इससे यह स्पष्ट हो गया कि उन्हें इसी कल्प के वैवस्वत मन्वन्तर के २८ वें कलियुग में यहां आना पड़ा है। अतः २७ कल्प का मन्तव्य गूढ़ है जिसका अर्थ पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है। अर्थात् एक कल्प में १४ मन्वन्तर तथा एक मन्वन्तर में ७१ चतुर्युग होते हैं। अतः २७×७१=१९१७ वर्ष। गूढ़ रूप से यह संख्या दी गई है जो और कुछ नहीं विक्रम सम्वतों की संख्या है।

उत्तर काण्ड दोहा नं० ६१ के नीचे की एक चौपाई यह बताती है कि कागभुषुण्डि जी उत्तर दिशा में एक सुन्दर नीले रंग के पर्वत पर रह रहे हैं—

**उत्तर दिसि सुन्दर गिरि नीला। तहं रह काकभुसुंडि सुसीला।।**

यहीं पर पक्षिराज गरुड़ उनसे वार्तालाप हेतु जाते हैं देखिये, दोहे ६२ (ख) के नीचे की यह चौपाई—

**गयउ गरुड़ जहं बसइ भुषुण्डा। मति अकुंठ हरि भगति अखंडा ।।**

अतः कागभुषुण्डि और पक्षिराज गरुड़ का मिलन तथा वार्तालाप सुन्दर नीले रंग के गिरि पर उत्तर दिशा में दूर पर हो रहा है। अब यह पता लगाना है कि यह नीले रंग का शिखर आखिर कहां स्थित है ? उत्तर काण्ड के दोहा नं० ५५ से इन दोनों का सम्मिलन स्पष्ट होता है और इस नीले रंग के शिखर का भी पता लगता है। भगवान शंकर और पार्वती के वार्तालाप में यह कहा गया है—

**दो० ऐसिअ प्रश्न विहंगपति कीन्हि काग सन जाई।**
**सो सब सादर कहिहउं सुनहु उमा मन लाइ ।। ५५ ।।**

हे उमा ! मैंने जिस प्रकार भव-बन्धन से छुड़ाने वाली कथा सुनी है सो हे सुमुखि सुलोचनि तुम वह प्रसंग सुनो। तुम्हारा दच्छ के घर में पहले अवतार हुआ था तब तुम्हारा नाम सती था। जब तुम्हारा दच्छ के यज्ञ में अपमान हुआ, तब तुमने अति क्रोध के वशीभूत हो प्राण तज दिये। मेरे अनुचरों ने तब वह यज्ञ भंग कर दिया। वह सब प्रसंग तुम जानती हो। तब मेरे मन में बड़ा भारी सोच हुआ और मैं तुम्हारे वियोग के कारण बड़ा दुःखी हुआ। तब मैं वैराग्य लेकर सुन्दर वनों, गिरियों तथा सरिताओं और तालाबों आदि का कौतुक देखता रहा। तब मैंने सुमेरु गिरि को देखा।

**गिरि सुमेरु उत्तर दिसि दूरी। नील सैल एक सुंदर भूरी ।।**
**तासु कनकमय सिखर सुहाए। चारि चारु मोरे मन भाए ।।**
**तिन्ह पर एक एक विटप विशाला। बट पीपर पाकरी रसाला ।।**
**सैलोपरि सर सुन्दर सोहा। मनि सोपान देखि मन मोहा ।।**
**दो० सीतल अमल मधुर जल जलज विपुल बहुरंग।**
**कूजत कल रव हंस गन गुजंत मंजुल भृंग ।। ५६ ।।**

तेहि गिरि रुचिर बसईखग सोई। तासु नासु कल्पान्तु न होई।।
माया कृत गुन दोष अनेका। मोह मनोज आदि अविवेका ।।
रहे व्यापि समस्त जगमाहीं। तेहि गिरि निकट कबहुं नाहिं जाहीं।।
तहंबसि हरिहि भजइ जिमि कागा। सो सुनु उमा सहित अनुरागा।।

उक्त कथन से यह सिद्ध हुआ कि कागभुषुण्डि जी विदेश में गये वहीं इस पावनपर्वत शृंखला सुमेरुगिरि पर पहुंचे। उसी के नीचे दक्षिण दिशा में इलावृत-वर्ष पहुंचे। इसी इलावृत देश के किसी नगर का नाम 'उजेनी' बताया गया है। इसका शाब्दिक अर्थ 'उज्ज्वल अयनी' अर्थात् पवित्र स्थान आता है। फारसी भाषा में पवित्र को 'तहूर' कहते हैं तथा पवित्र स्थान को ताहिरान इससे यह निष्कर्ष निकला कि यह संकेत तिहरान के लिए है। इसी स्थान को चारों ओर से सप्त सागर मेखला की भांति घेरे हुए हैं।

**वयं रक्षामः में ईरान देश का वर्णन—**

ईरान और वहां के मूल निवासियों के विषय में हमने कुछ गलत धारणायें बनाकर इसे एक म्लेच्छ देश मान लिया है। पर इसका हमारे पौराणिक तथा वैदिक साहित्य में विशद वर्णन है। अपनी इसी गलत धारणा के कारण हमने ऋषभ के पुत्र भरत के नाम पर बसाये हुए भरत खण्ड को भारतवर्ष ही समझ लिया है। भारत वर्ष तो उस भरत खण्ड का नवां भाग है। प्रसिद्ध लेखक तथा अन्वेषक आचार्य चतुरसेन शास्त्री अपनी पुस्तक वयंरक्षामः में ईरान देश का और उसके प्रसिद्ध पौराणिक पवित्र स्थानों का जो वर्णन करते हैं वह हमारी आंखें खोल देने को पर्याप्त है। वयं रक्षामः में ईरान (पर्शिया) देश का वर्णन वे इस प्रकार लिखते हैं—

"यह देश मूल नृवंश का मूल स्थान है। यहीं पर काश्यप सागर तट पर मरीचि पुत्र कश्यप और दक्ष पुत्रियों दिति, अदिति. दनु आदि पत्नियों से दैत्य, दानवों से आगे असुर आदि जातियां तथा आदित्यों से देव आर्य आदि जातियों का उद्गम हुआ तथा उनका विस्तार भूमण्डल में हुआ। इसी देश में अप-वर्ग नर्क, यमलोक, वैकुण्ठ, सत्यलोक, कल्पतरु, सुरपुर इन्द्रलोक, शरवन, अत्रि आश्रम, चन्द्रलोक, तपोभूमि आदि भारतीय पुराणों के प्रसिद्ध स्थान हैं। यहीं वह तपोभूमि है जहां कभी रात नहीं होती। मनुर्भरतों के छः विजेताओं ने चाक्षुष मन्व-न्तर में ईरान को जय किया तथा वहां अपने साम्राज्य स्थापित किये। ग्रीस और तुर्किस्तान को भी मनुर्भरतों मन्यु ने जय किया था। इक्ष्वाकुवंशी युवनाश्व के पिता आर्द्र थे। उनके नाम पर आर्द्रपुर (Adrianople) तथा आर्द्रसागर (Adriatic) हैं। बैबीलोनियां के सम्राट पुरुरवा के पुत्र आयु थे। ययाति ईरानी के वंश में है जो दैत्य गुरु शुक्र तथा दैत्य-पति वृषपर्वा के दामाद थे। शंकर का जाटा प्रदेश भी यहीं है। आज हम शंकर को जटाधारी कहते हैं। यह मात्र बालों की जटा नहीं अपितु ईरान का जाटा प्रदेश यहां के 'शंकर' प्रदेश में है। जाट और जिप्सी जातियां इसी प्रांत को हैं। साध्य और वसु को पर्शिया के इतिहास में बासन तथा सीथियन कहते हैं। नन्दनवन पारदिया के अधीश्वर देवराज इन्द्र (Inda Bugash) थे। ययाति और नहुष को भी इन्द्र-पद प्राप्त हुआ था। पर दोनों को देवों ने पदच्युत कर दिया था। इस पर ययाति ने स्वर्ग प्राप्ति के लिए युद्ध किया था जिसे ईरानी इतिहास तथा ऋगवेद में 'दस राजाओं के युद्ध' के नाम से वर्णित किया गया है।"

"यद्यपि वे स्वर्गधाम वे (इलाबृत-प्रांत)के इन्द्र बनाकर पीछे

पदच्युत किए गए थे ऐसा पुराणों से प्रकट है। उनके पुत्र अनु थे जो ज्येष्ठ थे, पुराणों में लिखा है कि अनु के वंशज म्लेच्छ हो गए थे। प्रसिद्ध है कि ययाति के पांचों पुत्रों की पांच शाखायें चन्द्रवंश में चलीं। यह भी स्पष्ट है कि ये पांचों पुत्र ययाति की दो अनार्य पत्नियों शर्मिष्ठा तथा देवयानी से हुए थे। अतः मातृ गोत्र के सम्बन्ध से वे शुद्ध आर्य न थे। अनु का राज्य (Anao) नाम से काश्यप सागर के उस पार था। पुराणों में अनु का राज्य ऐसे स्थान में बताया गया है जहां जलमार्ग से ही जाया जा सकता है। आज वहां से प्राचीनतम वस्तु उपलब्ध हो रही है। इसी प्रकार उशीनर का राज्य उशै प्रदेश में था।''

"शिवि प्रदेश व सीस्तान में शिवि का राज्य था जिसने कपोतों को आश्रय दिया था। उशीनर के वंशज अब उजबेक (उशवेग) कहलाते हैं। शिवि के चारों पुत्रों के राज्य ईरान और भारत की सीमाओं पर स्थापित हुए जो मद्र राज्य (Medes) कहलाते थे। उत्तर मद्र ईरान का मीडिया प्रदेश है जो काश्यप सागर तट पर अत्रि स्थान पर है। मद्रपति शाल्व यहीं के राजा थे जिन्हें पाश्चात्य सुलेमान (Soloman) कहते हैं। इनकी राजधानी पासर गद्दी थी। सावित्री के पिता अश्वपति भी मद्र के राजा थे। ईरान का (Medes) प्रदेश ही मद्र राज्य था। इन्हीं मीडों की पुत्री माद्री पाण्डवों के पिता महाराजा पाण्डु की रानी थीं।''

"पाण्डवों क स्वर्गारोहण की कथा महाभारत में है। कहा गया है कि पांचों पाण्डव द्रौपदी तथा एक श्वान स्वर्ग गए। मार्ग में उन्हें इन्द्र, कुबेर व वरुण के देश मिले। वे स्वर्ग के

मार्ग में गल गए। वास्तव में पाण्डवों की यह यात्रा ईरान की ही यात्रा थी। महाभारत संग्राम के बाद यद्यपि पाण्डवों की युद्ध में जय हो गई थी परन्तु उनकी शक्ति इतनी क्षीण हो चुकी थी कि वे भारत का साम्राज्य नहीं सम्हाल सके। जो शत्रु युद्ध क्षेत्र में खेत रहे उनके तरुण उत्तराधिकारियों ने प्रबल बैरी का रूप धारण किया। पाठक जानते हैं कि सुरपुर, इन्द्र-पुरी, स्वर्ग, बैकुण्ठ आदि स्थान ईरान में थे तथा ईरान से आदित्यों के बहिष्कार के बाद केवल चन्द्रवंशियों (इलावंशियों) के ही राज्य (ईलाम) रह गए थे। भगवान कृष्ण का साम्राज्य भी ईरान में था इसी से उन्होंने भारत को त्याग कर बार-बार ईरान की यात्रा की।"

भगवान कृष्ण की राजधानी द्वारिका के अन्तर्गत आने वाले कुछ पाश्चात्य देशों के विषय में कल्कि-पुराण में स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है।

**चोल बर्बरकर्वाख्यान्द्वारका देश मध्यगान।**
**पुत्रेभ्यः प्रदशौ कल्किः कृतवर्य्या पुरस्कृतान ।। २९ ।।**
**(कल्कि-पुराण ३।१४)**

**अर्थ** :—अनन्तर कल्कि जी ने कृतवर्म्म आदि पुत्रों को द्वारका के अन्तर्गत चोल बर्बरक तथा अर्व (अरब) आदि देशों को प्रदान किया।

"स्वार्गारोहण में पाण्डवों को साध्य, वसु, रुद्र आदित्य आदि जातियां मिली थीं। ये सभी जातियां ईरान में ही रहती थीं। पाण्डवों के मामा शल्य भी वहीं रहते थे। यह भी कहा जाता है कि पाण्डव गल गए। गलिल व गाल एक प्रदेश था।

वहां के निवासी गलित कहलाते हैं। इन्हीं को ग्वालवंशी कहा गया है।''

"इस प्रकार ईरान आदित्यों—चन्द्रवंशियों का भृगु, अत्रि, वशिष्ठ और वामदेव, नारद का तथा कृष्ण, यम, रुद्र आदि का मूल स्थान है। खासकर आज ईरान में जितनी जातियां आबाद हैं वे प्रायः चन्द्रवंश से किसी न किसी प्रकार सम्बन्धित हैं।''

'ईरान शब्द एर्य्यान या आर्य्यान का विकृत रूप है। मैक्समूलर का मत है कि ईरान के पूर्वज भारतीय थे। वहां भारतीय नाम सरस्वती (हरहरवती) सरयू (हरयू) भरत (फरत या यूफरत) काशी (कास्सी) आदि प्रचलित हैं।''

"पर्शिया के इतिहास में मत्स्य, उरवंशी, यम, नृग, नृसिंह आदि सभी देव (दीव जाति) परदेशी माने गए हैं। इजिकल जंनेसिस और अन्य ईरानी इतिहासकार भी इनके वंश वृक्ष से अनजान हैं। यह वंश वृक्ष हमारे पास पुराणों में सुरक्षित है और सब छठे मन्वन्तर के पुरुष हैं।''

"ईरानी सभ्यता का जन्मस्थान ईलाम है जिसकी राजधानी पर्शिया (परसीपोलिस) संसार की प्राचीनतम राजधानी थी। ईलाम या इलावृत ही सुरपुर के नाम से विख्यात हुआ तथा उस काल में ईरान, बेबीलोनिया, सीरिया, मिश्र और यवन (यूनान) के शासक सूर्यवंशी थे जो पीछे वहां के देव मान लिए गए। ८००० ईसा पूर्व की 'सुसा' (सूसा) में देवगण सर्वोच्च सभ्यता का विस्तार करके रहते थे। चाक्षुष मन्वन्तर से लेकर असुर सम्राट वणीपाल के समय ६४५ ईसवी पूर्व तक

पर्शिया में देवों का शासन रहा जिनमें वरुण, मित्र, अंगिरा, मन्यु, अत्यराति तपोरत (Tapurian) नृग, नरसिंह, सूर्य्यं, किश, अग्नि आदि प्रमुख थे"

—वयं रक्षामः से साभार उद्धत

**स्वामी चरणदादास जी द्वारा स्थान के संकेत...**

श्री स्वामी चरणदास जी अपने भक्तिसागर नामक ग्रंथ में लिखते हैं—

**विष अमृत तेहि माहिं भूत और देव मुनीश्वर ।**
**फूल शूल तेहि माहिं यमन अवतार ऋषीश्वर ।।**
**चरण दास शुकदेव भज ये सब दरशें दृष्टि अब ।**
**निराकार निरगुण कहत भूले भटके लोग सब ।।**

अर्थ—जैसे विष के बीच अमृत रहता है (देखिये समुद्र-मन्थन की कथा) भूतों और देवों के बीच जैसे मुनीश्वर लोग तप करते हैं । जैसे काँटों के बीच फूल रहता है उसी भांति वह ऋषियों का स्वामी यमनों(यवनों) के बीच से अवतरित होगा। चरणदास जी शुकदेव जी के कथानुसार कहते हें कि वे सब लोग अपनी दृष्टि खोलकर दर्शन कर लें और उनका भजन करें । वे लोग वस्तुतः भूले भटके हुए लोग हैं जो उनको निराकार तथा निर्गुण कहते हैं ।

इसी प्रकार इसी प्रकरण में वे आगे यह कहते हैं ।

**आप ही वेद अरु पण्डित भयो आप कत्तेब अरु आप काजी ।**
**आप काशी भयो आप जाती भयो आप मक्का भयो आप हाजी**
**आप ही बांग अरु आप मुल्ला भयो आप पंडा भयो घंटबाजी ।**

चरणदास शुकदेव हरि मुरीद मुरशिद भयो मुकति और बंद सब आप साजी।

इसी प्रकार बड़े ही स्पष्ट रूप से ईश्वरीय-अवतार के सार्वजनिक रूप से प्राकट्य का स्थान निम्न प्रकार वर्णित करते हैं ×

दो० मन दानिशतम हिज्र ने दीगर वस्ल न कोइ।
चरणदास गफलत उठै वाहिद वाहिद होइ ॥५२॥
हिज्र वस्ल दोनों नहीं नहिं दरिया नहिं मौज।
चरणदास ज़र्रा नहीं जो कर देखा खोज ॥५३॥
दरियाबाद हदलाम का बाजत अनहद बीन।
सकल चरण फरजन्दना नाहीं संगता बीन ॥ ५४ ॥
दीद सुनीद जहाँ नहीं तहाँ न काल न हाल।
जौहर जिसम इलम नहीं चरणदास नहिं खाल ॥५५॥
बुरी सिफारश यामिनी और सगाई होय।
चरणदास यों कहत हैं भूल करो मत कोय ॥५६॥

अर्थ :—चरणदास जी कहते हैं—मैं समझता हूं कि जहां हिज्र (धर्मयुद्ध) हुआ है उस स्थान के अलावा और कहीं भी मेरा प्रिय नहीं है। जब लोगों की गफलत भरी नींद समाप्त हो जाएगी तब वे उसे पहचानेंगे और तब चारों ओर से यह पुकार उठेगी तू ही है तू ही है। जिस प्रकार किसी को दरिया (नदी) का पता नहीं उसे भला लहरें (मौजें) कहां दिखाई देंगी। इसी प्रकार जिसे धर्म पर प्राणों का बलिदान करने वाले उस धर्मयुद्ध तथा देश निकाले (हिज्र) का पता नहीं है उसे भला उस प्रियतम (ईश्वरीय-अवतार) का दर्शन कैसे हो सकता है? चरणदास जी कहते हैं कि वह एक छोटा सा ज़र्रा नहीं है जो तुम उसे खोजने जाओ और पा न सको। दरिया (नदी) के किनारे आबाद उस

नगर को देखो जहां इस्लामी तीर्थस्थलों की सीमा आ जाती है या वहां इस्लाम की हद आ जाती है और नया धर्म आरम्भ हो जाता है। उसी स्थान पर यह ऐसी बीन बज रही है जिसकी कोई सीमा नहीं है। इसी बीन का संसार भर के मानव चरण पुत्र की भांति अनुगमन करेंगे। इस जैसी बीन संसार में बजाने वाला अन्य कोई नहीं है।

"चरणदासजी कहते हैं जिसके आंखें तथा कान नहीं हैं उस को भला कैसे यह पता लगेगा कि किस समय क्या घटना घट चुकी है? जिसको शरीरों के जौहर (मानव शरीरों के बलिदान) का पता नहीं है वह मानव शरीर मानव का नहीं हैं। यद्यपि इस बात की सिफारिश करना बुरा है पर यह सब घटनाएं यमन देश में हो रही हैं जहां प्रिय से यह सगाई (सम्बन्ध) हो रही है। चरणदास जी कहते हैं कि उसे पहचानने में अब कोई भूल मत करो।"

**ईश्वरीय अवतार के नामों सम्बन्धी संकेत...**

उपरोक्त भविष्यवाणियों के साथ साथ कल्कि-अवतार के नामों सम्बन्धी भविष्यवाणियां स्पष्ट करना भी हम अपना कर्तव्य समझते हैं। इन पर विचार करते हुए पाठकों को निम्न बातें ध्यान में रखना चाहिए।

(क) नामों सम्बन्धी समस्त भविष्यवाणियां संस्कृत ग्रंथों में सभी संस्कृत में ही होंगी। अतः उनके दूसरी भाषाओं में अर्थ करने होंगे स्थान सम्बन्धी संकेत सभी ईरान की ओर जाते हैं जहां फारसी भाषा बोली जाती है अतः उन सभी संस्कृत नामों का अर्थ हम निस्संदेह फारसी भाषा में ही करके देखना होगा।

(ख) इनमें कुछ नाम तो वास्तविक नाम होंगे और कुछ नाम निस्संदेह उनके गुणों को बताने वाले होंगे। पर यह गुण-वाचक नाम भी ऐसे होने चाहिए जो उनके विख्यात गुण हों।

(क) श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में नाम

गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन को अपने विराट विश्व रूप का भविष्य दर्शन कराते हैं। इस विश्व रूप का नाम बड़े ही आश्चर्यजनक ढंग से भाः दिया हुआ है। देखिये गीता के ११वें अध्याय का १२ वां श्लोक :—

**दिवि सूर्य्य सहस्रस्य भवेद्युग पदुत्थिता ।**
**यदि भाः सदृशी सा स्याद्‌भासस्तस्य महात्मनः ॥१२॥**

**अर्थः**—हे राजन् ! हजारों सूर्यो (आध्यात्मिक) के एक साथ उदित होने पर उत्पन्न हुआ जो प्रकाश होवे वह भी कदाचित ही उस महात्मा भाः के प्रकाश के सदृश होवे।

यहां भाः का अर्थ ईश्वरीय प्रकाश होता है। इस श्लोक का तात्पर्य इससे अगले ही श्लोक से स्पष्ट हो जाता है।

**तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।**
**अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥१३॥**

**अर्थः**—ऐसे आश्चर्यमय रूप को देखते हुए पाण्डुपुत्र अर्जुन ने उस काल में अनेकों प्रकार से विभक्त हुए अर्थात् पृथक हुए सम्पूर्ण जगत को उस देवों के देव (भगवान भाः) के शरीर में एक जगह स्थित देखा।

भगवान कृष्ण अपने अगले विश्व रूप अवतरण में अनेकों प्रकार से विभक्त अर्थात् भौगोलिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा जातीय रूप से अलग अलग टुकड़ों में बटें हुए सम्पूर्ण जगत को एक साथ संगठित रूप में होने का संकेत देते हैं। यानी उनके अगले विश्व रूप भा: का उद्देश्य सम्पूर्ण विश्व की अखण्ड एकता स्थापन करना है।

**(ख) श्रीमद्भागवत में नाम :—**

श्रीमदभागवत में प्रथम स्कन्ध तृतीय अध्याय के निम्न श्लोक में भी कल्कि-भगवान के पिता का नाम विष्णुयश बताया गया है तथा उनके पुत्र का नाम कल्कि-विष्णुयशा प्रसिद्ध है ।

**अथासौ युग संध्यायां, दस्यु प्रायेषु राजसु ।**
**जनिता विष्णुयश सो नाम्ना कल्कि जगत्पति ॥ २५ ॥**

इसी भांति आगे द्वादश स्कन्ध के द्वितीय अध्याय का यह श्लोक देखिये यहां भी विष्णुयश ही बताया गया है।

**शम्भल ग्राम मुख्यस्य, ब्राह्मणस्य महात्मनः ।**
**भवने विष्णुयश सः कल्कि प्रादुर्भविष्यति ॥ १८ ॥**

**(ग) महाभारत में नाम—**

महाभारत में यह लिखा है—उस समय काल की प्रेरणा से शम्भल ग्राम के अन्तर्गत विष्णुयश नाम के ब्राह्मण के घर में एक बालक उत्पन्न होगा उसका नाम होगा कल्कि-विष्णुयशा। वह ब्राह्मण कुमार बहुत ही बलवान, बुद्धिमान और पराक्रमी होगा। वही सब दुष्टों का नाश करके सत्ययुग का प्रवर्तक

होगा। धर्म के अनुसार विजय प्राप्त करके वह चक्रवर्ती राजा होगा और सम्पूर्ण जनता को आनन्द प्रदान करेगा।

### (घ) ब्रह्मपुराण में नाम

ब्रह्मपुराण में भी हरि-अवतार सम्बन्धी प्रकरण में अन्तिम श्लोकों में इस प्रकार लिखा गया है ' इसके पश्चात 'विष्णुयशा' नाम से प्रसिद्ध 'कल्कि' अवतार होने वाला है। भगवान कल्कि शम्भल ग्राम में अवतीर्ण होंगे। उनके अवतार का उद्देश्य भी सब लोगों का हित करना है।

### (ङ) कल्कि-पुराण में नाम

कल्कि पुराण प्रथमांश द्वितीय अध्याय में कल्कि-अवतार प्रकरण में स्वयं कल्कि-भगवान कहते हैं—

**तच्छ्रुत्वा पुण्डरीकाक्षो ब्रह्माणम्विदम ब्रवीत ।।**
**शम्भले विष्णुयश सो गृहे प्रादुर्भवाम्यहम् ।**
**सुमत्यां मातरि विप्रो । कन्यायां त्वन्निदेशतः ।। ४ ।।**

अर्थ...कमलनयन भगवान विष्णु देवतागण के दुःख की कथा सुनकर ब्रह्मा जी से इस प्रकार बोले...'हे विभो। तुम्हारे कथनानुसार शम्भल नगर निवासी विष्णुयश की सुमति नाम्नी कन्या के उदर से मैं जन्म ग्रहण करूंगा।'

फिर आगे इसी अध्याय में यह श्लोक प्राप्त होता है...

**सुमत्यां विष्णुयशसा गर्भमाधत वैष्णवम् ।**
**गृह नक्षत्र राश्यादि सेवित श्री पदाम्बुजम ।। ११ ।।**

अर्थ—विष्णुयश के शुक्र से सुमति के गर्भ में ग्रह, नक्षत्र राशि आदि से श्री पदाम्बुज विष्णु भगवान गर्भस्थ भ्रण रूप सेवित हुए।

गूढार्थ—उपरोक्त श्लोक में विष्णुयश की सुमति (बुद्धि) ही में भगवान विष्णु के चरण कमलों का प्रवेश हुआ है क्योंकि विष्णुयश स्वयं अपनी ही कन्या सुमति में भला कैसे गर्भ स्थापित कर सकते हैं ?

इस मंतव्य को यह श्लोक सिद्ध करता है कि उपरोक्त सब वर्णन रूपक शैली में दिया गया है। देखिये कल्कि-पुराण द्वितीयांश का पांचवां अध्याय

जीवस्यापि गृहस्थस्य देहो गेहं मनोऽनुगः।
बुद्धिर्भार्य्या तदनुगा वर्यामत्यवधारय ।। ३४ ।।

अर्थ—जीव रूपी गृहस्थ का यह शरीर गृह है और मनोनुगामी बुद्धि भार्य्या है जिसके हम सब अनुगत सेवक हैं।

उपरोक्त सभी भविष्यवाणियों से यह स्पष्ट हो गया कि कोई ऐसा महापुरुष अवतरित होगा जिसके नाम का अर्थ विष्णुयश है। विष्णुयश के नाम का अन्य भाषाओं फारसी तथा अंग्रेजी में अर्थ करने पर निम्न अर्थ प्राप्त होते हैं—

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| विष्णु | = God = | अल्लाह | } | भा: |
| यश | = Glory = | बहा | } | |

इन दोनों फारसी शब्दों को संयुक्त कर देने पर आश्चर्य्यजनक रूप से 'बहाउल्लाह' नाम प्राप्त होता है।

## (च) संत तुलसीदास जी द्वारा बताये गये नाम

रामचरितमानस की एक भविष्यवाणी जो गीता की प्रसिद्ध भविष्यवाणी "यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति" की ही तरह प्रसिद्ध है निम्न भांति दी गई है—

**जब जब होई धर्म की हानी ।**
**बाढ़हि अधम असुर अभिमानी ।।**
**तब तब धरि प्रभु मनुज शरीरा ।**
**हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ।।**

इसमें ईश्वरीय अवतार का गुणवाचक नाम कृपानिधि दिया गया है यह नाम 'द्विजदयाल' का ही पर्याय है । अतः 'दयाल' नाम से जिस द्विज का वर्णन रामचरितमानस में है वे ही संसार में धर्म की हानि होने पर मनुष्य शरीर में विष्णु का अवतार धारण कर सज्जनों का कष्ट हरण करेंगे । वे द्विज दयाल परमार्थ साधु तथा परमार्थ का रहस्य बताने वाले तथा संसार की समस्त नीतियों के दाता होंगे इस प्रकार का वर्णन पहले ही किया जा चुका है —

**परम साधु परमारथ विंदक । शम्भु उपासक नहिं हरि निंदक ।।**
**तेहि सेवउं मैं कपट समेता । द्विज दयाल अति नीति निकेता ।।**

उत्तर काण्ड दोहा नं० १०४ के ऊपर एक चौपाई में यह नाम दिया है ।

**बुध युग धर्म जानि मनमाही । तजि अधर्म रति धर्म कराहीं ।।**

अर्थात 'बुध' युग धर्म को मन में जानकर अधर्म को छुड़-वाकर धर्म में रति करायेंगे । कल्कि-पुराण तृतीयांश अध्याय

४ में सूर्य्यवंशी मरुराज अपना परिचय देते हुए अपना एक नाम 'वुध' भी बताते हैं।

इन वेदर्षि बुध का परिचय पुराणों में एक आख्यान के माध्यम से दिया हुआ है। इनका विवाह इला से हुआ था जो उमावन में प्रवेश करने के कारण 'इल' से 'इला' हो गई थीं। इन इला को पुराणों में मित्रावरुण की कन्या बताया गया है तथा उनका नाम 'सुद्युम्न' बताया है। कल्कि पुराण इस कन्या का नाम 'चारुमती' बताता गया है। इस प्रकार दोनों ही नामों के संकेत किसी ऐसे नाम की ओर जाते हैं जिसका अर्थ सौन्दर्यवती होता है। कल्कि पुराण में भी अनन्त जी अपना पूर्व रूप क्लीव का बताते हैं। यह समस्त वार्तालाप गूढ़ अलंकारिक शैली में है पाठकों को इसका मर्म समझना होगा। सौन्दर्यवान का फारसी भाषा में एक ही अर्थ है वह है हुस्सैन और उसका स्वामी अर्थात अली। इस प्रकार सुद्युम्न तथा चारुमती के स्वामी 'बुध' का अर्थ निकलता है। कल्कि पुराण में यह रहस्य निम्न श्लोक में दिया गया है।

यज्ञरात सुतां पत्नीं मानिनीं रूपशालिनीम् ।
प्राप्याहं परितुष्टात्मा गृहस्थः स्त्रीवशोऽभवम ।।२३।।

अर्थ—मानिनी रूप शालिनी (सुद्युम्न) जो यज्ञों के स्वामी (मित्रावरुण) की कन्या थी, को भार्य्या पा सन्तुष्ट हृदय मैं गृहस्थाश्रम में वास करने लगा और क्रमशः स्त्री के वश हो गया।

**(छ) स्वामी चरण दास जी द्वारा बताया गया नाम—**

स्वामी चरण दास जी अपनी पुस्तक 'अमरलोक अखण्ड

धाम वर्णन' में कहते हैं×

महाकठिन दुर्लभ हुतो अमर लोक का भेद।
ताको मैं बीजक कियो भाषो भेद अभेद ॥६॥
निराकार तो ब्रह्म है माया है आकार।
दोनों पदवी को लिए ऐसा पुरुष निहार ॥७॥

आगे अपनी अन्य पुस्तक 'शब्द वर्णन' के अन्तर्गत इन्हीं निराकार के साकार रूप अवतार का वर्णन निम्न भांति करते हैं--

इन नैनन निराकार लहा।
कहन सुनन की कौन पतीजै जान अजान है सहज रहा॥
जित देखो तित अलख निरंजन अमर अडोल अबोल महा।
ज्योति जगत विच झिलमिल झलकै अगम अगोचर पूरि रहा॥

अलख लखा जब बेगम हुवा भर्म कोट तब तुरत ढहा।
सर्वमयी सब ऊपर राजै शून्य स्वरूपी ठोस ठहा॥
जीवनमुक्त भया मन मेरा निर्भय निर्गुण ज्ञान महा।
गुरु शुकदेव करी जब किरपा चरणदास सुख सिद्ध बहा॥

अर्थ :—इन आंखों ने उस निराकार को पाया। यह बात कहने सुनने की नहीं है क्योंकि न जानने योग्य मेरे लिये सहज ही जान लिया गया है। जिधर भी देखो उधर ही वह समस्त विश्व को आनन्द प्रदान करने वाला, जो अमर है, स्थिर है तथा मौन है, मुझे दिखाई दे रहा है। संसार के बीचों बीच जहां अखण्ड ज्योति प्रकाशित हो रही है, वहीं वह न जानने

योग्य और न दिखाई देने वाला पूर्ण हो रहा है अर्थात वहीं पूण रूपेण प्रकट हो रहा है। मैंने उस अदृश्य को जब स्त्री होकर वहां गया तब देख पाया। (यहां सुमेरु-पर्वत के ज्योतिः स्थल शिखर पर उसी उमावन का संकेत दिया गया है) तब मेरे भ्रम का किला तुरन्त ढहकर गिर पड़ा। वह सर्वमयी सबसे ऊपर शोभित हो रहा है। वह शून्य स्वरूपी उस स्थान पर साक्षात् रूप से स्थित है। उसके महा ज्ञान से मैं निर्भय तथा जीवन मुक्त होकर निर्गुण भक्ति प्राप्त कर सका। जब मेरे गुरु शुकदेव ने मेरे ऊपर कृपा की तब मुझ चरणदास ने इन 'सिद्ध ब्रह्म' के दर्शन का सुख प्राप्त किया।

**संत तुलसीदास जी द्वारा एक गुप्त मत का वर्णन—**

तुलसीदास जी द्वारा लिखा हुआ सम्पूर्ण उत्तरकाण्ड ही एक भावी 'गुप्त मत' तथा उसके संस्थापक 'द्विज-दयाल', (जिन्हें स्पष्ट रूपेण कागभुषुण्डि जी ने 'विष्णु' बताया है) की भविष्य-वाणियों से भरा पड़ा है जिसे सम्पूर्ण रूप से स्थानाभाव से लिखना हमारे लिए कठिन है। हमारा यह विश्वास है कि इस देश के भावी विद्वान् इन समस्त रहस्यों का गहराई से अध्ययन करके इन पर बड़े-बड़े ग्रंथों की रचना करेंगे। यहां जरा इसी काण्ड के दोहे नं०४२के नीचे की चौपाईयों पर ध्यान दीजिये।

**एक बार रघुनाथ बोलाए। गुरु द्विज पुरवासी सब आए॥**
**बैठे गुर मुनिअरु द्विज सज्जन। बोले बचन भगत भव भंजन॥**
**सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउं न कछु ममता उर आनी॥**

फिर आगे यह कहते हैं ।

**ताहि कबहुं भल कहइ न कोई । गुंजा ग्रहइ परसमनि खोई ।।**

पाठक इस पर विचार करके देखें कि यह कौन सी 'पारस-मणि' है । क्या मात्र सोना बनाने वाली अथवा वही पारस देश की भक्तिमणि और भवसागर से पार लगाने वाली यह दृढ़ नाव और उसका कर्णधार यह 'सद्‌गुरु' कौन है ?

**करनधार सदगुर दृढ़ नावा । दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ।।**

और फिर आगे देखिये यह कौनसा 'समाज' है जिसे पाकर भवसागर से तरा जा सकता है ।

**दो०—जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ ।**
**सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ ।।४४।।**

भगवान राम यह कौन सा सुलभ सुखद मार्ग बताते हैं । और कौन सी स्वतंत्र भक्ति, जो बिना सन्तों, (सज्जनों) के संग के प्राप्त नहीं होती । ऐसा सत्संग जो संसृति की भावना का अन्त कर दे ।

**सुलभ सुखद मारग यह भाई । भगति मोरि पुरान श्रुति गाई ।।**
**भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी । बिनु सतसंग न पावइ प्रानी ।।**
**पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता । सतसंगति संसृति कर अंता ।।**

और यह कौन से विप्र हैं, जिनके पदों की पूजा करने को भगवान राम कहते हैं, जिनकी कपट छोड़कर सेवा करने का अनुरोध किया जा रहा है ? बेचारे तुलसीदास जी पर नासमझ टीकाकारों तथा मूर्ख आलोचकों ने इन चौपाइयों का मर्म न

समझकर कितने भारी आरोप लगाये हैं। वे कटु आलोचक आंख खोलकर इन चौपाइयों का भेद जान लें। हमारा उन सबके लिए यह खुला निमंत्रण है।

**पुन्य एक जग महुं नहि दूजा। मन क्रम बचन विप्र पदपूजा॥**
**सानुकुल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपट करइ द्विज सेवा॥**

विज्ञ पाठक समझ गए होंगे कि यह संकेत भगवान राम ने भगवान विष्णु के अवतार 'द्विजदयाल' के लिए ही दिये हैं। और अब आगे देखिये इन्हीं के दिए हुए उस भक्ति-पथ का जो उस समय गुप्त था, पर अब प्रकट हैं, वर्णन और उसका नाम बड़े छिपे ढंग से दे दिया है :...

**दो०...औरउ एक गुपुत मत सबपि कहउं कर जोरि।**
**संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥४५॥**
**कहउं भगतिपथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा॥**
**सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई॥**
**मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा विस्वासा॥**
**बहुत कहउं का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई॥**
**बैर न विग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा॥**
**अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ विज्ञानी॥**
**प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृनसम विषय स्वर्ग अपवर्गा॥**
**भगति पच्छ हठ नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सबदूरि बहाई॥**

**अर्थ** :—अब तुमसे एक और गुप्त मत हाथ जोड़कर कहता हुँ। वह यह है कि शंकर के भजन बिना कोई भी मनुष्य मेरी भक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता। (यहां गुप्त संकेत है कि भगवान शंकर के नगर शम्भल तथा उनके विभिन्न प्रतीकों

आदि पर ध्यान देते हुए द्विजदयाल द्वारा दिये 'शम्भु-मंत्र' को देखो।)

इस कथन पर समस्त श्रोतागण भगवान राम से निवेदन करते हैं कि वह कौन सा गुप्त भक्ति-पथ है और किस प्रयास से प्राप्त होगा। (क्योंकि भगवान शंकर के सकल स्वरूप की आराधना उस समय प्रचलित थी) और इससे सभी अच्छी तरह परिचित भी थे। फिर भगवान राम का उसे गुप्त मत (छिपा हुआ मत जो तब तक प्रकट नहीं हुआ हो) बताने से भला क्या तात्पर्य था ?

भगवान राम का इस सम्बन्ध में दिया हुआ उत्तर विचारणीय और आधुनिक मानव-समाज के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विज्ञ पाठक इस पर विचार करें कि क्या ऐसा कोई भक्ति-पथ अब तक प्रचलित भी था ?

भगवान राम इस गुप्त भक्तिपथ का वर्णन करते हुए कहते हैं "उस भक्ति-पथ में न योग की आवश्यकता है न यज्ञ, जप, तथा उपवास की। उसमें तो बस सरल स्वभाव चाहिए जिसके मन में कुटिलता न हो। जैसा कुछ लाभ प्राप्त हो उसका अनुयायी उसी में सन्तोष करता रहे। इस प्रकार का मनुष्य मेरा दास कहलाता है। उसका आचरण यदि निम्न भांति हो तो तुम क्या इस पर विश्वास कर सकोगे ? मैं अधिक कथा बढ़ाकर तो क्या कहूं पर इस प्रकार के आचरण के मैं वश में हूं।"

"उस भक्ति-पथ का अनुयायी किसी से वैर नहीं करता। न किसी से विग्रह करता है। वह किसी को न तो तंग करता है न किसी को त्रास देता है। वह सभी प्रकार की परिस्थितियों

में अपने को सुखी समझे। जो अपने आरम्भ (जन्म) कुटुम्ब, कुल, बंश, जाति) को तथा निकेत (ग्राम, नगर, प्रान्त तथा देश) को नहीं माने अर्थात् इन सबका मानाभिमान न करे। जो पाप रहित हो, क्रोध न करे, दक्ष यानी सदैव तत्पर हो (सुस्त न हो)। वह विज्ञान के अनुसार आचरण करने वाला, अर्थात् अंधविश्वासी तथा रूढ़िवादी न होकर विज्ञान और तर्क पर आधारित जीवन यापन करने वाला हो) वह सदैव सज्जनों के संसर्ग से प्रीति रखने वाला हो। इस संसार के समस्त विषय भोगों स्वर्ग तथा अपवर्ग के सुखों को एक साधारण तिनके के समान समझने वाला हो। वह सदैव ईश्वर-भक्ति का पक्ष ले पर इसमें हठ न करे। वह किसी के साथ शठता का आचरण नहीं करे। उस 'बहाई' से समस्त दुष्ट तर्क दूर रहें।"

यही उस 'गुप्त-मत' के अनुयायी का आचरण होगा।

**कल्कि पुराण में इस महान धर्म-गंगा का वर्णन**

कल्कि-पुराण में भी इस नवीन धर्म-गंगा का वर्णन रूपक शैली में गूढ़ ढंग से दिया गया है—देखिये गंगा-स्तोत्र

पितामह कमन्डलु प्रभव मुक्ति बीजालता।
श्रुति स्मृति गण स्तुता द्विज कुलालवाला वृता ॥
सुमेरु शिखराभिदा निपतिता त्रिलोकावृता।
सुधर्म फलशालिनी सुख पलाशिनी राजते ॥६॥

अर्थ :—ब्रह्मा जी के कमंडल से इस धर्म गंगा की उत्पत्ति हुई है। इस धर्म-लता का बीज संसार से मुक्ति है। इस धर्म गंगा की स्तुति संसार के समस्त धर्मशास्त्रों द्वारा की गई है। द्विजगण ही इसके वाह्यस्वरूप है (अर्थात् बहाईयों के नाम से

ही धम गंगा वहाई कहलावेगी) यह धर्म गंगा सुमेरु के शिखरों का भेदन करके प्रकट हुई है वहां से पृथ्वी पर गिरकर इसने त्रिलोकी को अर्थात् तीनों ही लोकों को आवृत कर लिया है (अर्थात् अब तीनों लोकों में अलग-अलग सात गंगाओं की आवश्यकता नहीं रही और एक ही गंगा सम्पूर्ण लोकों में बह कर उसे ढक लेगी) इस धर्म गंगा द्वारा सुधर्म रूपी फल तथा सुख रूपी पुष्पावली शोभित हो रही है।

इयं सुरतरंगिणी भवन वारिधेस्तारिणी।
स्तुता हरि पदाम्बुजादुपगता जगत्संसदः ॥
सुमेरु शिखरामर प्रिय जला मलक्षालनी।
प्रसन्नवदना शुभा भवभयस्य विद्राविणी ॥४॥

अर्थ :—इस धर्म गंगा में देवताओं द्वारा लहरें उत्पन्न की गई हैं (अर्थात् उन्होंने ही अवतरित होकर अपने कार्यों द्वारा इसमें शक्ति तथा वेग उत्पन्न किये हैं। इसी धर्म गंगा द्वारा संसार-सागर से सब पार लगने वाले हैं। यही धर्म-गंगा हरि के चरण कमलों का अनुगमन करने वाली विश्व संसद द्वारा स्तुत्य है। इसी धर्म गंगा का जल जो सुमेरु शिखर निवासी अमर (देवताओं) का प्रिय है संसार के समस्त बाह्य तथा आंतरिक पापों को धोने वाला है। यह धर्म की गंगा संसार को प्रसन्न करने वाली, उसका शुभ (कल्याण) करने वाली तथा उसके भय को दूर करने वाली है।

संसार सागर इस धर्म गंगा को बड़े आदरपूर्वक ग्रहण करते हुए ब्रह्म पुराण में इसकी स्तुति करता है। यह स्तुति मात्र किसी भौतिक नदी की नहीं है बल्कि उस महान धर्म गंगा की ही है जो इस युग में पुनः भगवान विष्णु ने अपना नवीन अव-

तार विष्णुयश (बहाउल्लाह) धारण करके पुराण प्रसिद्ध सुमेरु शिखरों पर स्थित होकर **बहाई-धर्म** के रूप में बहाई है।

पाठक भविष्यवाणियों के विशेष अध्ययन हेतु लेखक **की** इसी विषय पर लिखी गई पुस्तक **'कल्कि अवतार की खोज'** का अध्ययन करने का कष्ट करें।

---

# संक्षिप्त बहाई-इतिहास

## विषय-सूचि


| क्रम | विषय | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| (क) | यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति | १३५ |
| (ख) | अंधकार में आशा की किरण एक सचेतक | १३६ |
| (ग) | देवी अग्रदूत का प्राकटय | १३८ |
| (घ) | वध स्थल पर एक महान चमत्कारिक घटना | १४२ |
| (ङ) | ईश्वरीय प्रकाश को बुझाने का प्रयास | १४५ |
| (च) | एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना | १४६ |
| (छ) | वह भयानक नारकीय कारावास | १५० |
| (ज) | सुमत्यां विष्णुयशसा गर्भमाधत्त वैष्णवम् की वह परम पावन घड़ी | १५२ |
| (झ) | क्रूर काल की कठोरतम परिणति का वह क्षण | १५४ |
| (ञ) | अरुणोद्य की वह पावन बेला जब धरती धन्य हुई | १५६ |
| (ट) | विलक्षण देवी-प्रतिभा का वह अनन्य उदाहरण | १५७ |
| (ठ) | निर्धनों तथा निर्बलों के पिता वे 'द्विज दयाल' | १५६ |
| (ड) | स्वदेश का निष्कासन | १६० |
| (ढ) | निर्जन वन में दो वर्ष तक एकान्त वास | १६१ |
| (ण) | पुनः बगदाद वापस आना | १६३ |
| (त) | एक हत्यारे का निष्फल प्रयास | १६४ |
| (थ) | पुनः निर्वासन का आदेश | १६५ |
| (द) | विदाई की वह निर्मम बेला | १६६ |
| (ध) | आगया वह 'चिर प्रतीक्षित' संसार की नौका का तारण हार | १६७ |

## यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में समस्त संसार की ही दशा शोचनीय हो चुकी थी। पर ईरान देश तो अवनति की पराकाष्ठा पर पहुंच चुका था। विभिन्न संस्कृतियों का उद्गम-स्थल, विभिन्न जातियों का मूल स्थान, देवों आदित्यों, असुरों, दैत्यों, दानवों, सूर्य्य व चन्द्रवंशी आर्यों, गन्धर्वों, मद्रों का यह प्रदेश 'इलावृत' अपने प्राचीनतम वैभव को खो चुका था। यम, इन्द्र वरुण तथा कुबेर आदि लोकपालों से रक्षित यह प्रदेश अव म्लेच्छ दुर्वल शासकों के अधीन था, जो वड़े क्रूर और अनाचारी थे। सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात 'परसी पालिस' के नगर के ध्वंस से इसका प्राचीनतम सांस्कृतिक वैभव पहले ही नष्ट हो चुका था। अन्य देशों से इसका आध्यात्मिक सम्बन्ध विच्छेद हो चुका था। अनेकों सदियों से इस देश पर विभिन्न जातियों के आक्रमण होने से इसका सांस्कृतिक, धार्मिक अस्तित्व ही परिवर्तित हो गया था। न्याय और रक्षा के स्थान पर शासकों का आचरण दस्युओं जैसा था। शासक जिसे भी चाहता मन-माना रुपया राजकोष में जमा करने को विवश करता था।

इसी प्रकार आध्यात्मिक पतन भी अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुका था। शासकीय धर्म इस्लाम (शिया) था। राजकीय पुरोहित बड़े हठी, असहनशील व अत्याचारी थे। लोग ईसा मसीह की दया और हजरत मोहम्मद के न्याय को भूल चुके थे। जनता अशिक्षित व अन्ध विश्वासी हो गई थी। धर्म नाना प्रकार की रूढ़िवादिता तथा अन्ध श्रद्धा से ग्रसित हो चुका था। शिया मुसलमानों के अतिरिक्त, जरथोस्ती, ईसाई, यहूदी आदि

परस्पर विरोधी सम्प्रदाय वाले भी पर्य्याप्त संख्या में थे। प्रत्येक मत के लोग एक दूसरे से भयंकर रूप से घृणा करते थे तथा एक दूसरे को म्लेच्छ समझते थे। एक दूसरे को धिक्कारना और अपशब्द कहना भयानक अवस्था तक पहुंच चुका था, जिससे आये दिन रक्तपात तथा हत्याओं के क्रूरतम दृश्य सामान्य घटना बन चुके थे। वर्षा के दिनों में किसी जरथोस्ती या यहूदी का सड़क पर चलना खतरे से खाली न था। क्योंकि यदि उसके गीले कपड़े भी यदि किसी मुसलमान से छू जाते तो वह मुसलमान अपने को अपवित्र समझने लगता और इस अपराध में वह जरथोस्ती या यहूदी अपनी जान से भी हाथ धो बैठता था।

### अन्धकार में आशा की एक किरण 'एक-सचेतक'

सामान्य लोग घोर दरिद्रता तथा अशिक्षा में अपना जीवन व्यतीत करते थे। तत्कालीन वैज्ञानिक अन्वेषणों से जनता अनभिज्ञ थी। अतः जीवन बड़ा अस्वास्थ्यकर था। साधारण जनता सामन्त वर्गीय लोगों तथा धार्मिक मुल्ला मौलवियों के अत्याचारों से पीड़ित अत्यन्त दुखी थी। इस प्रकार के अभेद्य अन्धकार में आशा की एक किरण के रूप में एक दिव्य सचेतक का आविर्भाव हुआ। वे थे, एक महान ईश्वर भक्त सन्त शेख अहमद अहसाई। उन्होंने यह भविष्यवाणी की...पवित्र इस्लाम में जिस पुनरुत्थान (कयामत) की भविष्यवाणी थी, वह समय निकट आ गया है और वह प्रतीक्षित शीघ्र प्रकट होने वाला है। इस कथन ने ईरान में बड़ी हलचल उत्पन्न कर दी। बड़ी शीघ्रता के साथ वहां के मुसलमान उनकी इस भविष्योक्ति से आकर्षित होकर उस घड़ी की प्रतीक्षा करने लगे। शीघ्र ही उनके इस कथन पर विश्वास करने वाले उनके अनुयायियों का

एक समुदाय तैय्यार हो गया। सन्त शेख अहमद के पश्चात उनके एक पधान शिष्य हुये, 'सैय्यद काजिम अली'। ये भी एक बड़े ईश्वरभक्त तथा दिव्य प्रतिभा सम्पन्न सन्त थे और अपनी गरिमामयी वाणी से उस भविष्य कथन का सम्पूर्ण देश में प्रचार करते रहे कि उस दैवी-आविर्भाव का प्राकट्य समीप ही है।

उनके निधन के पश्चात उनके अनेकों शिष्यों में से कुछ ने यह जानकर कि अब वह समय आ चुका है, ४० दिनों के व्रत तथा प्रार्थनाओं में अपना समय व्यतीत किया। वे दिन कितनी व्यग्रता में तथा अश्रुपूरित, अनुनयपूर्ण प्रार्थनाओं में व्यतीत हुये।

हे प्रभु ! अपने अवतार का शीघ्र प्राकट्य करो। वह प्रियतम परम पावन तारणहार कहां है ? किस ओर है ? दया करो हे प्रभु···के स्वर सिसकियों तथा आंसुओं में डूब जाते। इस प्रकार ये समय व्यतीत करके वे दिव्य प्रेरणा से दक्षिण की ओर चल दिये। उनमें से एक थे 'मुल्ला हुसैन। दिन भर चलते और सायंकाल होने पर किसी बस्ती की मस्जिद में ठहर जाते। सायंकाल को लोगों को इकट्ठा करके प्रतीक्षित के आगमन की शुभ घड़ी की निकटता का समाचार बताते। प्रातः होते ही पुनः अगले स्थान की ओर चल देते। इसी प्रकार चलते-चलते एक सायंकाल को ईरान के दक्षिणी नगर शीराज के द्वार तक पहुंच गये। अपने साथी को ठहराकर वे नगर की ओर चल दिये। जब नगर के द्वार पर पहुंचे तो वहां एक नवयुवक को टहलते पाया। नवयुवक पर दृष्टि पड़ते ही उन्होंने मुल्ला हुसैन को अपनी ओर इशारे से बुलाया और उन्हें साथ लेकर नगर के अन्दर चल दिये। कुछ मार्ग तय करने के उपरान्त वे एक सुन्दर स्वच्छ घर के सामने जा रुके। नवयुवक ने धीरे से द्वार खट-

खटाया। तुरन्त द्वार खुल गया और उन्होंने अन्दर प्रवेश किया। मुल्ला हुसैन यह समझे कि यह भी शेख अहमद के अनुयायियों में से ही कोई एक हैं।

अन्दर जाकर हाथ पैर धुलवा कर कुछ गरम पेय पीने के उपरान्त वार्त्तालाप आरम्भ हुआ। अभी तक मुल्ला हुसैन इन नवयुवक से इतने आकर्षित थे कि उन्हें कुछ भी पूछने का साहस ही नहीं हुआ था। सामान्य कुशल मंगल के उपरान्त नवयुवक ने मुल्ला हुसैन से उनके शीराज नगर में आगमन का उद्देश्य पूछा। मुल्ला हुसैन बड़े आश्चर्यचकित हुये और उन्होंने उन्हें अपनी यात्रा का उद्देश्य बताया कि अब वह घड़ी निकट है जब इस्लाम धर्म के भविष्य कथन के अनुसार वह प्रतीक्षित बारहवें 'इमाम मेंहदी' का प्राकट्य होना है। मेरी इस यात्रा का उद्देश्य उस चिर प्रतीक्षित की खोज करना ही है। इस पर उस नवयुवक ने पूछा कि तुम किस तरह पहचानोगे कि यही वह प्रतीक्षित अवतार 'इमाम मेंहदी' हैं ? इसके उत्तर में 'मुल्ला-हुसैन' ने उनके शिक्षक द्वारा बताये गये कुछ चिन्ह बताये जिन से उसकी पहचान हो सकती थी।

**दैवी-अग्रदूत का प्राकट्य**

उस नवयुवक ने कहा 'इन चिन्हों को मुझ में देखो।' मुल्ला हुसैन यह सुनकर चकित रह गये और उन्होंने देखा कि वे सब चिन्ह जो उनके शिक्षक सैय्यद काजिम अली द्वारा बताये गये थे, इस नवयुवक में विद्यमान हैं। तब उन्होंने अपने आतिथेय इन युवक से कुछ अन्य प्रमाण मांगे। नवयुवक ने बताया कि किसी प्रभु-अवतार के लिये दैवी श्लोकों को प्रकट करने से बड़ा

कोई प्रमाण नहीं तब कागज और कलम उठा कर उन्होंने अपना प्रथम पावन लेख प्रकट किया। उन्होंने बड़ी तेजी के साथ लिखने के साथ साथ उन श्लोकों को धीमे तथा मीठे स्वर में उच्चरित किया। मुल्ला हुसैन को अब अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं थी। वे अत्यन्त भाव विह्वल तथा भक्ति विभोर होकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से ईश्वरावतार के चरणों में गिर पड़े। नवयुवक ने कहा आज से मेरा नाम 'बाब' (द्वार) और तुम्हारा उपनाम 'बाबुलेबाब' (द्वार का द्वार) होगा।' यह समय था मई मास की २२वीं तारीख सन् १८४४ ईसवी, सूर्य्यास्त के दो घण्टे ग्यारह मिनट पश्चात। तदनुसार बैषाख मास सम्वत् १९०१ वि० जिसकी ओर महाकवि भक्त सूरदास जी ने संकेत किया है।

**'एक सहस नौ सौ से ऊपर ऐसौ योग परै।'**

वह रात्रि एक नये युग का उषा काल थी। बहाई पंचाग का आरम्भ उसी दिन से होता है। इसके थोड़े समय पश्चात जिस प्रकार मुल्ला हुसैन ने भगवान बाब को पहचाना उसी प्रकार अन्य व्यक्तियों ने भी उन्हें स्वतन्त्र रूप से पहचाना। ये सभी प्रथम अनुयायी जीवित अक्षर (LETTERS OF L1VING) कहलाये।

इनका जन्म स्थान था 'शीराज' ईरान का दक्षिणी नगर। भगवान बाब हज़रत मुहम्मद के वंश में दिनांक २० अक्टूबर सन् १८१९ ई० को एक व्यापारी परिवार में उत्पन्न हुये। उन का नाम ईरान की भाषा के अनुसार सैय्यद अली मोहम्मद था। उनके जन्म के कुछ समय पश्चात् उनके पिता की मृत्यु हो

गई। तब उन्हें उनके मामा की देखभाल में रखा गया। बाल्यावस्था में उनको एक अध्यापक के पास भेजा गया जो पवित्र कुरान तथा प्राथमिक विषय पढ़ाता था। बाल्यावस्था से ही महात्मा बाब अन्य बालकों से भिन्न थे। वे सदा कठिन प्रश्न पूछते तथा स्वयं ही इस प्रकार उनका उत्तर देते कि बड़े बूढ़े भी चकित रह जाते। प्रायः जब दूसरे बालक खेलकूद में व्यस्त होते तो आप किसी वृक्ष की छाया में या किसी और शान्त स्थान पर प्रार्थना में मग्न होते। तत्पश्चात जब महात्मा बाब ने ईश्वरावतार के रूप में अपनी वास्तविकता प्रकट की तो उन के मामा तथा शिक्षक दोनों ने ही उनमें विश्वास किया।

ईश्वरावतार सूर्य्य की भांति होता है। जब सूर्य्य उदित होता है तो केवल उनके अतिरिक्त जो अधर्म तथा पक्षपात आदि की निद्रा में मग्न होते हैं सभी उसको देखते हैं यहां तक कि ये निद्रालीन व्यक्ति भी शीघ्र या विलम्ब से जान जाते हैं कि सूर्य्य चमक रहा है और अन्धकार नष्ट हो रहा है। महात्मा बाब का सन्देश सर्वप्रथम ईरान के लोगों को दिया गया परन्तु अन्य देशों के मुसलमान अभी तक यह नहीं जानते थे कि उनका प्रतिज्ञत (PROMISED ONE) आ गया है। इसलिये जब भिन्न देशों से हजारों मुस्लिम तीर्थयात्री हज के लिये 'मक्का' में एकत्रित हुये तो महात्मा बाब भी इस्लाम के इस तीर्थ स्थान मे पहुंचे और वहां पर एकत्रित लोगों में घोषणा की कि उनकी आराधना का उद्देश्य प्रकट हो गया है और वे ही उनके प्रतिज्ञत हैं। किसी ने भी उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया किन्तु भगवान बाब अपनी घोषणा परी कर चुके थे।

जब महात्मा बाब अपनी मातृ-भूमि लौटे तो सिपाहियों का

एक दस्ता उन्हें मिला जो उन्हें बन्दी बनाने आया था, क्योंकि कट्टर मुल्ला नहीं चाहते थे कि नये धर्म का प्रसार हो। इन मुल्लाओं ने हर प्रकार से ईश्वर के उस प्रकाश को बुझाने का प्रयत्न किया जो महात्मा बाब के वक्षस्थल में प्रदीप्त हो रहा था। उस दिन से महात्मा बाब को बड़ी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। घोषणा के पश्चात् महात्मा बाब का जीवन अधिकतर विभिन्न कारावासों में ही व्यतीत हुआ। दो बार उनको अत्यन्त ठण्डे तथा दुर्गम पर्वतीय कारावासों में भेजा गया। परन्तु कोई शक्ति प्रभु-वाणी को फैलने से कभी रोक नहीं सकी। जब महात्मा बाब कारावास में थे तो उनके स्वामि-भक्त अनुयायियों ने उनके संदेश को सारे देश में फैलाया और थोड़े से समय में हजारों व्यक्तियों ने उनके धर्म हेतु अपने प्राणों का बलिदान किया। 'शीश का लोभ तजि पन्थ धावै' की स्वामी चरणदास जी की भविष्यवाणी इस प्रकार पूरी हो रही थी।

इसी प्रकार समय व्यतीत हो रहा था जब महात्मा बाब ने एक पत्र संदेशवाहक मुल्ला हुसैन द्वारा तिहरान के समीप 'नूर' ग्राम के दिवंगत मन्त्री मिर्जा बुजुर्ग के एक पुत्र 'मिरजा हुस्सैन अली' के नाम प्रेषित किया। मिरजा हुसैन अली ने उस पत्र में निहित सत्य को स्वीकार कर लिया और अपने को भी महात्मा बाब के अनुयायियों में सम्मिलित कर लिया।

महात्मा बाब अभी ३१ वर्ष के नवयुवक ही थे जब मुल्लाओं ने उनकी हत्या करने का निश्चय किया। महात्मा बाब जानते थे कि परमात्मा की राह में उनके बलिदान का दिन समीप आ गया है। उस समय वे 'तबरीज' नामक नगर में कैद थे। वह

दुर्भाग्यपूर्ण दिन था ९ जौलाई सन् १८५० ई०। प्रातःकाल वह अफसर जो महात्मा बाब को शहीद करने के कार्य पर नियुक्त किया गया था, उनके पास जेल में आया। महात्मा बाब उस समय अपने एक अनुयायी के साथ वार्त्तालाप कर रहे थे जो उन की अन्तिम आज्ञायें लिख रहा था। उस अफसर ने महात्मा से कहा कि उनको मृत्युदण्ड देने का समय हो गया है और सैनिक आज्ञापालन के लिये मैदान में तैयार खड़े हैं। महात्मा बाब ने कहा इस समय उन्हें अपने शिष्य के साथ वार्त्तालाप करना है। वह अफसर हंसने लगा कि एक कैदी अपनी मनमानी नहीं कर सकता। जब महात्मा बाब को ले जाया जा रहा था तो उन्होंने कहा कि जब तक इस संसार में उनका उद्देश्य पूरा नहीं हो जाता तब तक पृथ्वी की कोई शक्ति उनको क्षति नहीं पहुंचा सकती।

उस अफसर ने इस बात पर कोई ध्यान नही दिया और उन्हें चौक में ले गया। उस समय महात्मा बाब का एक नव-युवक शिष्य जिसका नाम मोहम्मद अली जनूजी था भागकर उनके पास पहुंचा और अपने प्रिय स्वामी के चरणों को पकड़ कर याचना की कि उसको भी उनके साथ मरने की आज्ञा दी जाये। अफसर ने उसको परे धकेलने का प्रयत्न किया परन्तु मोहम्मद अली जनूजी रोता रहा और उसने इतनी दीन याचना की कि अफसर को उसे भी साथ लेना पड़ा।

### बध स्थल पर एक महान चमत्कारिक घटना

चौक में जहां पर सैनिक महात्मा बाब पर गोली चलाने की प्रतीक्षा कर रहे थे लोगों की अपार भीड़ जमा हो गई। उन सबने देखा कि महात्मा बाब तथा उनके शिष्य को इस प्रकार

बांधा गया कि उसका सिर अपने प्रियतम की छाती पर था। ढोल पीटे गये तुरहियां बजाई गई। ज्योंही तुरहियों की आवाज बन्द हुई। यह भयंकर आज्ञा सुनी गई 'गोली चलाओ' साढ़े सात सौ सैनिकों ने निशाना बांध कर भगवान बाब पर बन्दूकें चलाईं। धुएं का एक विशाल बादल सारी जगह में फैल गया। सारा वातावरण बारूद की बू से भर गया। कुछ समय पश्चात् जब धुआँ साफ हुआ तो बड़े अचम्भे की बात हुई। महात्मा बाब का वहां कहीं चिन्ह तक न था परन्तु उनका शिष्य मुहम्मद अली जनूजी बिना किसी हानि के वहां खड़ा था। जिन रस्सियों से उन्हें बांधा गया था वे टुकड़े-टुकड़े होकर जली हुई अवस्था में उन्हें आजाद करके नीचे पड़ी हुई थीं। बहुत से लोगों ने कहा कि चमत्कार हुआ है तथा महात्मा बाब स्वर्ग को प्रस्थान कर गये हैं। गोली चलाने वाले सैनानायक तथा टुकड़ी ने ऐसी अद्‌भुत घटना पहले कभी नहीं देखी थी। तुरन्त महात्मा बाब को ढूंढ़ने के लिये प्रत्येक दिशा में अधिकारियों को भेजा गया। उसी अफसर ने जो महात्मा बाब को जेल की कोठरी से लाया था, उन्हें धैर्यपूर्वक उसी स्थान पर बातचीत समाप्त करते पाया, जिसमें विघ्न डाला गया था। महात्मा बाब मुस्करा कर बोले कि पृथ्वी पर अब उनका पवित्र कार्य पूरा हो गया है और वे अपने प्रयोजन की सत्यता को प्रमाणित करने के लिए अपना बलिदान देने हेतु तैयार हैं।

महात्मा बाब को पुनः एक बार फिर चौक में ले जाया गया परन्तु इस बार गोली चलाने वाली टुकड़ी और उसके नायक शामखां ने उनकी हत्या करने से इन्कार कर दिया और अपनी बैरकें छोड़कर बाहर चले गये। उन्होंने सौगन्ध खाई कि चाहें उन्हें बागी समझकर जो भी दण्ड दिया जाय पर वह ऐसे

निर्दोष तथा धर्मात्मा युवक पर पुनः गोली नहीं चलायेंगे। हत्या के लिए तुरन्त एक अन्य सैनिक टुकड़ी को तैयार किया गया, जिसका नायक 'नासिरी' था। पुनः उसी प्रकार भगवान बाब को बांधा गया। इस समय तक दोपहर के १२ बज चुके थे। मैदान में, बैरकों की छतों पर तथा आसपास के मकानों की छतों पर हजारों की संख्या में तमाशबीन खड़े थे।

भगवान बाब ने गम्भीर स्वर में कहा :—

"तुम्हें मालूम नहीं कि तुम क्या करने जा रहे हो जब तुम्हें इसका पता चलेगा उस दिन तुम पश्चाताप करोगे तब उस समय तुम्हारे बीच मैं नहीं होऊंगा।"

उसी क्षण एक भयानक काला बवंडर उठा और अधिकांश तमाशबीन भीड़ को वहां से भाग कर छिपना पड़ा। उधर गोली चलाने का आदेश मिला और साढ़े सात सौ गोलियां पुनः चल उठीं। इन गोलियों ने महात्मा बाब तथा उनके शिष्य के शरीर को छलनी कर दिया। पर इस बार पुनः एक आश्चर्य हुआ। उनके सुन्दर मुख पर जहां गोली का एक भी चिन्ह न था, अब भी सुन्दर मुस्कान छाई हुई थी। उससे किसी ऐसे व्यक्ति की शान्ति तथा प्रसन्नता प्रकट हो रही थी, जिसने मानवमात्र के लिए एक नये युग की घोषणा करने हेतु अपने जीवन का बलिदान कर दिया हो।

महात्मा बाब ईश्वर के एक महान अवतार थे। अपने सभी दिव्य लेखों में उन्होंने कहा कि उनके प्रकट होने का सबसे बड़ा उद्देश्य जगत को यह सुसमाचार देना था कि शीघ्र ही सभी युगों एवं सभी धर्मों का चिर प्रतीक्षित ईश्वरीय अवतार प्रकट

होगा। उन्होंने अपने अनुयायियों को चेतावनी दी कि ऐसा न हो कि वे उसे "जिसे परमात्मा प्रकट करेगा" पहचानने में असफल हों। उन्होंने कहा कि जैसे ही वे उसका सन्देश सुनें तो सब कुछ छोड़कर उसका अनुसरण करें। उनकी पवित्र पुस्तक 'बयान' है। इस प्रकार इस्लाम के अनुसार 'इमाम मेंहदी' की भविष्यवाणी पूर्ण हुई। उनकी शिक्षाओं का एक महत्वपूर्ण अंग उनके द्वारा प्रस्तुत 'मृतोत्थान' परम निर्णय दिवस तथा स्वर्ग एवं नर्क की व्याख्या है। मृतोत्थान (कायमत) से उनका तात्पर्य है सत्य सूर्य का एक नव प्रकटीकरण। मुर्दों के उठ खड़े होने का तात्पर्य है अज्ञान वासना तथा आलस्य की कब्रों से उठ खड़ा होना। 'निर्णय के दिन' का अर्थ है 'नए ईश्वरीय अवतार का दिन'।

महात्मा बाब को इस प्रकार शहीद करके ही अत्याचारी चुप नहीं हो गये। उनके बहुत से अनुयायियों पर जो सभी वर्गों धनिक तथा निर्धन, ज्ञानी तथा अज्ञानी पर 'बाब' की घोषणाओं का तीव्र प्रभाव तथा उनकी शिक्षाओं के शीघ्र प्रसार के कारण, दमन-चक्र का गति और अधिक तेज तथा क्रूर हो गई। घर लूटे तथा नष्ट किये गये। तिहरान, फारस, माजिन्दरान और दूसरे स्थानों में बाबी लोग बड़ी-बड़ी संख्या में निर्दयता से मार डाले गये। फांसी पर लटकाये गये, तोपों पर बांधकर उड़ा दिये गये। जीवित जलाये गये। टुकड़े-टुकड़े करके काटे गये। बड़े-बड़े कीलों को घनों द्वारा उनके सीने में गाड़ा गया। बरछों से छेदकर मोमबत्तियाँ अन्दर डाल कर जंजीरों से बाँध कर जलूस निकाले गये। घोड़ों के पीछे बाँधकर घसीटा गया। ऐसे-ऐसे भीषण राक्षसी अत्याचार किये गये जिनका वर्णन करना भी अत्यन्त कठिन है। इतने भीषण अत्या-

चारों तथा दमन के होते हुए भी यह धर्म-आन्दोलन आगे बढ़ता गया। अपितु इसी दमन के द्वारा विश्वासियों के विश्वास में वृद्धि हुई। इस प्रकार मेंहदी के अवतरण से सम्बन्धित अनेक भविष्यवाणियाँ अक्षरशः पूरी हुईं।

इस प्रकार केवल महात्मा बाब ने ही शहादत का प्याला नहीं पिया, उनके योग्य और निःस्वार्थी सहयोगियों को भी खोज-खोज कर पाशविक घृणा के साथ मौत के घाट उतारा गया। मुल्ला हुसैन, कुद्दूस, निर्भीक हृदय और उद्भट विद्वान दोहराब के वाहिद तथा जंजान के अडिग हुज्जत सभी मौत के मुंह में झोंक दिये गये। ईरान के इस छोर से उस छोर तक बाबियों के लिए शान्ति और सुरक्षा नहीं थी। जीने तक का अधिकार नहीं था। इस प्रकार से क्षत विक्षत और यातना भोग रहा समाज कब तक इन सतत आघातों को सह पाता। ऐसे समय में एक महापुरुष का उदय हुआ। ये थे नूर निवासी मिर्जा हुस्सैन अली। महात्मा बाब ने अपने बलिदान से कई दिन पूर्व स्वयं लेखन कार्य्य बन्द करके अपनी मुद्रा, लेखनी और एक पत्र इन्हीं के पास भेजा था जो उनके स्वर्गारोहण के पश्चात् उनके पास पहुंचा दिया गया था।

मिर्जा हुस्सैन अली ने इस नवीन आस्था में दीक्षित होने के पश्चात, बहुत शीघ्र ही बाब के सन्देश को प्रसारित करने के लिए कास्पियन सागर के तट पर स्थित अपने मूल प्रदेश की यात्रा की। माजिन्दरान में उन्हें अत्यन्त आदरपूर्ण दृष्टि से देखा जाता था अतः यह स्वाभाविक था कि वे कट्टर पंथियों के हृदय में विरोध की भावना जगा देते। उन्होंने उस स्थान के एक अत्यन्त प्रतिष्ठित मुल्ला को चुनौती दी कि वह उनके

दिये प्रमाणों का खण्डन करे पर इसे अपनी सामर्थ्य के बाहर समझकर वह मुल्ला मामले को टाल गया।

१८४८ईसवी के मध्य में बदस्त में एक सम्मेलन हुआ था। बाब के अनुयायी, जो दमन और उत्पीड़न से आंतकित थे और देख रहे थे कि उनका प्रिय और सर्वस्व बन्दी जीवन की यातनाये भोग रहा था, ईरान के ऊपर पूर्वी भाग में मिलने के लिए आ पहुंचे। उन समस्याओं पर विचार करने के लिए, जो उनके सम्मुख इसलिए आ खड़ी हुई थीं कि वे ऐसे सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे जिसके पीछे शासन और समाज हाथ धोकर पड़ा हुआ था। क्योंकि वे ऐसे धर्म पर श्रद्धा रखते थे जिसे कट्टर पंथियों ने निषिद्ध और वर्जित ठहरा दिया था। इस सम्मेलन में प्रमुख वाबियों के अतिरिक्त विद्वता और आत्म विश्वास की गरिमा से मण्डित बाब के प्रथम शिष्यों में से एक 'कुद्दूस' थे जिन्होंने भगवान बाब को खोजा, पाया और विश्वास किया। वहाँ कवियित्री कुरेंतुल ऐन थीं जिनकी रसवन्ती वाणी में माधुर्य्य की सरिता बहती थी और हृदय में साहस का सिन्धु लहराता था। बाद में जिन्हें 'ताहिरा' के नाम से प्रसिद्धि मिली। वे जीविताक्षरों में से एक थी जिन्होंने महात्मा बाब को कभी नहीं देखा था किन्तु दूरी के व्यवधान होते हुये भी स्वप्न द्वारा उनकी वाणी पहिचान कर उन पर विश्वास किया।

वाबी अभी बाव के द्वारा प्रकाशित धर्म की महत्ता को नहीं समझे थे। कुरेंतुल ऐन (ताहिरा) ने अपना बुर्का त्याग दिया और एक नये जन्म और नये युग की प्रतीक के रूप में खुले मुंह सभा में आई। उस सम्मेलन में उन्होंने अन्धविश्वास पूर्वाग्रह और अंधानुकरण के विरोध में अपनी

आवाज उठाई। जब महात्मा बाब ने इस सम्मेलन के परिणामों के विषय में सुना तो उन्हें अपार हर्ष हुआ।

बदस्त से मिर्जा हुस्सैन अली तेहरान लौट आये थोड़े समय पश्चात् वे मुल्ला हुस्सैन से मिलने गये, जिन्होंने तीन सौ से अधिक बाबियों के साथ माजिन्दरान के जंगलों में स्थित शेख तबरसी के किले में शरण ली थी। मुल्ला हुसैन ने उसके चारों ओर रक्षा के लिये मोर्चाबन्दी कर ली। कुछ समय बाद कुद्दूस भी उनसे आ मिले। क्रोध से आग बबूला हुए मुल्ला लोगों ने एक बवण्डर खड़ा कर दिया और सरकार को बाध्य किया कि वह इन निर्दोष जौर धर्मात्मा लोगों के विरुद्ध जिनकी जान का ग्राहक समाज और शासन पहले से ही बना हुआ था एक दण्डाभियान भेजे। फौजों ने कूच कर दिया और उस किले पर घेरा डाल दिया। यह समाचार सुनते ही मिर्जा हुस्सैन अली अपने धर्म बन्धुओं की विपत्तियों में हिस्सा बंटाने तत्काल तबरसी दुर्ग की ओर चल पड़े। पर प्रभु का विधान कुछ और था कि तबरसी के विक्रमी रक्षक अपने रक्त से अपने प्रिय धर्म पर मुहर लगायें और भविष्य के किसी विराटतर उद्देश्य के लिये मिर्जा हुस्सैन अली के जीवन को सुरक्षित रखा जाये। गवर्नर ने उन्हें मार्ग में ही रोक कर कैद कर लिया और उन्हें अमूल नगर ले जाया गया। धर्म के ठेकेदार मृत्यु का मन्त्र फूंक रहे थे और भीड़ रक्त की प्यासी हो रही थी। जनता को संतुष्ट करने के लिये गवर्नर ने किसी प्रकार का दण्ड देना चाहा पर मिर्जा हुसैन अली ने अपने साथियों के स्थान पर स्वयं अपने को प्रस्तुत कर दिया और भीड़ के क्रोध को स्वेच्छा से अपने ऊपर ले लिया। उन्हें 'बस्तिनाद' की यातना दी गई जिसका वर्णन करते हुए लेखनी काँपती है। पैर के

तलवों पर बाँस या केन की खप्पचियों से उस सयम तक प्रहार किये जब तक तलवे लुहू लुहान न हो गये। इतनी तकलीफ देने के उपरान्त भी क्रूर राज कर्मचारियों को सान्त्वना न मिली और उन्होंने उन्हें खड़ा करके धकेलते हुए चलने को मजबूर किया। हंसते-हंसते उन्होंने ये समस्त कष्ट और पीड़ायें झेल लीं। बाद में उन्हें रिहा कर दिया गया क्योंकि वहाँ के सामन्त तथा राज्य परिवार से उनका एक सम्बन्ध था।

## एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना

महात्मा बाब के बलिदान के दो वर्ष पश्चात् सन् १८५२ ईसवी के अगस्त मास में एक घटना हुई जिससे बावियों पर और भयानक प्रभाव डाल दिया—

सादिक नामक म० बाब का एक नवयुवक शिष्य अपने प्रिय शिक्षक की दर्दनाक मृत्यु का दृश्य देखकर इतना विकल और पीड़ित हो गया कि उसके मस्तिष्क की दशा बेकाबू हो गई। जब शाह घोड़े पर सैर को निकल रहा था कि उस युवक ने साधारण छर्रों वाली बन्दूक से शाह को मार डालने के विचार से समीप जाकर दाग दिया। सही नाप के छर्रे न होते हुए भीं गोली दाग देने स यह प्रमाणित होता है कि युवक अपना मानसिक सन्तुलन खो चुका था। शाह को कुछ चोट आई और उसने तुरन्त ही आदेश दिया कि सभी बावियों को मौत के घाट उतार दिया जाये। आदेश मिलने की देर थी। सादिक के उसी स्थान पर तलवार से टुकड़े कर दिये गये। करीब ८० बावियों को तिहरान में समाप्त कर दिया गया। अन्य को कैद करके जेल में डाल दिया गया।

जिस समय सादिक ने शाह को मार डालने का यत्न किया

उस समय मिर्जा हुस्सैन अली अपने ग्राम के भवन में निवास कर रहे थे। उनकी पत्नी असिय्यिह खानुम बच्चों के साथ नगर वाले मकान में थीं। अचानक भाग कर आये हाँफते हुए एक सेवक ने यह समाचार दिया –

"मालिक मालिक को पकड़ लिया है। मैंने खुद उन्हें देखा है। वे कई मीलों की यात्रा करके आये हैं। ओह ! उन्होंने उन्हें बस्तिनादों की यातना भी दी है। उनके चरण लहूलुहान हैं और उनके पैरों में जूते नहीं हैं। उनके मस्तक का परिधान नहीं हैं और वस्त्र फटे हुए हैं। और उनके गले के चारों ओर जंजीरें कसी हुई हैं।"

यह सुनकर सभी बहुत आतंकित हो गये और उनके परिवार के अधिकांश सदस्य छिप गये। केवल एक हब्शी स्त्री इस्फन्दियार ही इस कठिन परिस्थिति में उनकी पत्नी तथा बच्चों की सेवा करती रही। विद्रोहियों का दल उनके दोनों घरों में घुस आया ओर लूटपाट करके सारा सामान ले गया। कीमती वस्तुओं में से एक को भी न छोड़ा। इनके सम्बन्धियों में से केवल एक मिर्जा मूसा जो उनके भाई थे, अपना कर्त्तव्य पालन करते रहे और उन्होंने खानुम तथा बच्चों की सुरक्षित स्थान पर व्यवस्था कर दी।

## वह भयानक नारकीय कारवास

तिहरान का यह प्रसिद्ध 'सियाह चाल' नामक कारागृह, जहाँ मिर्जा हुस्सैन अली को अन्य बाबियों के साथ रखा गया था, वस्तुतः किसी समय शहर के गन्दे पानी के जमा रखने के काम आता था। इस कारागृह में उतरने के लिये उन्हें अपने

गले के चारों ओर कसी गई जंजीर तथा हाथ पैरों में लगी हुई बेड़ियों को लिये सीढ़ियों के तीन मोड़ों से उतर कर पहुंचना होता था। इस अन्धकारपूर्ण कारागृह में १५० खूनी, डाकू और चोर थे। बाहर निकलने का केवल एक ही मार्ग था जिससे होकर वे नीचे आये थे। वातावरण में इतनी जी मिचलाने वाली गन्ध थी जिसका वर्णन करना कठिन है। उनके साथ पांच अन्य बाबियों को भी उसी प्रकार बाँध दिया गया था। जब एक बाबी हिलता या खिसकता था बगल वाले की जंजीरें उसके घावों में धंसने लगती और कष्ट और पीड़ा से वे बाबी कराह उठते। ऐसी अवस्था में नींद या आराम का कोई प्रश्न ही नहीं पैदा होता था। भोजन की भी कोई व्यवस्था अधिकारियों की ओर से नहीं थी। पहरेदार इतने क्रूर थे कि बाहर से आये हुए भोजन में विष मिला दिया करते थे। उनके मिलाये विष से उनके प्राण तो न गये पर शेष जीवन के लिए वे एकदम कमजोर हो गये।

उधर जेल की चहारदीवारी के भीतर बाबियों का साहस और विपत्तियों और पीड़ाओं के साथ बढ़ता जा रहा था। दिनोंदिन उनमें अधिक साहस और शक्ति आ रही थी। वे सब दिन-रात प्रार्थनायें अर्पित करते रहते और इन सामूहिक प्रार्थनाओं का स्वर कारागार के वातावरण में तैरता रहता था। प्रत्येक दिन बाबियों में से एक या दो को बाहर खींच लाया जाता और कठिन से कठिन यातना देने के पश्चात् उनकी दर्दनाक हत्या कर दी जाती। जल्लाद को सौंपने से पूर्व उन्हें नगर के, किसी अत्याचारी के सुपुर्द कर दिया जाता जो उन्हें अपने ढंग यातनाएं देता। बाबियों को यातना पहुंचाने वाले ये मूढ़मति लोग बाबियों के साहस और शक्ति को न जान सके। बाबि

जब अपनी प्रार्थनाओं में इन यातना ओर पीड़ा पहुंचाने वालों के प्रति ईश्वर से क्षमा याचना करते तो वे लोग और भी क्रोधित हो उठते और उनकी रक्त-पिपासा और भी बढ़ जाती।

**'सुमत्यां विष्णुयशसा गर्भमाधत्त वैष्णवम्' की वह घड़ी**

जेल में मिर्जा हुस्सैन अली नींद नहीं ले सके। बंधी हुई जंजीरों के बोझ तले सो सकना कठिन था। एक रात्रि को जब वे निद्रा की मंद लय में सो रहे थे कि उनको एक विचित्र सी अनुभूति हुई। इस अनुभव या प्रतीति को उन्होंने अपने ही शब्दों में इस प्रकार लिखा है :—

"मुझे लगा कि जैसे मेरे मस्तक से कोई वस्तु वह कर मेरे वक्ष पर छा रही थी। यह वस्तु ऊंचे पर्वतों से गिरने वाले झरनों के जल के समान थी। उनका अंग-प्रत्यंग अग्निमय हो गया था।"

एक रात उन्हें स्वप्न आया। दसों दिशाओं से उन्होंने स्वरों का आलाप सुना—"हम तुम्हें तुम्हारे द्वारा और तुम्हारी लेखनी के द्वारा निश्चय ही विजयी बनायेंगे। जो भी तुम पर बीत रही है उससे भयभीत या दुःखी न होना क्योंकि तुम्हारी पूरी रक्षा हो रही है ईश्वर शीघ्र ही धरती की मिट्टी के तत्वों से ऐसे लोगों को खड़ा कर देगा जो तुम्हारे द्वारा या तुम्हारे नाम से तुम्हारी सहायता को उठ खड़े होने वाले हैं।"

फिर एक मौके पर उन्होंने विचित्र और मधुर स्वर सुना। उन्होंने स्वर की ओर चेहरा किया और देखा कि एक युवा स्त्री वायुमण्डल में तैर रही है। वह स्त्री इतनी सुन्दर और

कमनीय थीं कि उन्हें ऐसा लगा कि मानों ईश्वर का रूप ही उस प्रसन्न नारी की आत्मा में खिल रहा है। स्वर्ग ओर धरती के बीच वह मनुष्यों के मस्तिष्कों और हृदयों को पुकार रही थी। वह एक ऐसा संदेश दे रही थी जो मनुष्यों का बाह्य और आन्तरिक जीवन खुशहाल और सम्पन्न कर रहा था।

वह स्त्री उनकी ओर उंगली से संकेत करती हुई कह रही थी :—

"ईश्वर की सौगन्ध। यही वह महा पुरुष है जो सभी ब्रह्माण्डों का परम प्रिय है मगर फिर भी तुम इसे नहीं पहचान सके हो। यही वह ईश्वरीय रहस्य है...... जिसे तुम पहिचान नहीं सके हो।"

हजारों वर्ष पूर्व लिखी गई कल्कि-पुराण की इस भविष्य-वाणी का कथन इस घटना से कितना मिलता हुआ है।

**तस्य विष्णोरनन्तस्य वसुधाऽधात्पयःसुधाम् ।**
**मातृकः मांगल्यवचः कृष्ण जन्म दिने यथा ।।१७।।**

**अर्थ** :—कृष्ण जन्म की भाँति भगवान अनन्त विष्णु के कल्कि अवतार धारण करने पर श्रीमती भगवती वसुमती ने पयः सुधाधार(श्वेत दुग्ध जैसी अमृत धारा) का प्रवाह किया। मातृका देवी ने मांगलिक वचन उच्चरित किये।

इस प्रकार मिर्जा हुस्सैन अली को ज्ञात हो सका कि उन्हें ईश्वर ने इसलिए चुना है कि वे महात्मा बाब के पूर्व प्रचलित मनोरथ को आगे बढ़ायें। इसी परम पावन घड़ी से उनका नाम 'बहाउल्लाह' हुआ जिसका शाब्दिक अर्थ 'ईश्वर का

प्रकाश' या 'विष्णुयश' होता है। इस काल की सही तिथि का अभी तक पता नहीं चला है किन्तु यह घटना सन् १८५२ ईसवी के अगस्त मास की अन्तिम तिथि को हुई है। इस घटना की सार्वजनिक घोषणा कई वर्ष पश्चात् की गई।

कारावास की परिधि के अंदर का दृश्य वर्णन करते हुए हृदय विदीर्ण होता है। मृत्यु का संदेश मिलते ही जब विदा होने वाला बाबी मारे प्रसन्नता के भगवान बहाउल्लाह की हथेलियाँ चूमता और दूसरे साथियों से लिपट कर विदा माँगता तो लगता कि काल कोठरी की दीवारें सहम गईं हैं और अंधकार और गहरा हो चला है। मरने की ख़ुशी में जब बाबी अपने शरीर पर कसी गईं ज़ंजीरों को खींचता, ऊपर जाने की सीढ़ियों पर नाचता हुआ चढ़ रहा होता तो नीचे अंधेरे में प्रार्थनाओं के स्वर फूट निकलते। ज्यों-ज्यों विदा हो रहे बाबियों की जंजीरों की खड़खड़ाहट दूर होती जाती त्यों-त्यों प्रार्थनाओं के स्वर वातावरण में और भी स्पष्ट होते जाते।

## क्रूर-काल की कठोरतम परिणति का वह चरम क्षण

अन्त में वह परम अशुभ दिन भी आ पहुंचा, जब स्वयं भगवान बहाउल्लाह को भी एक ऐसी अदालत में लाया गया जो उन्हें मृत्युदण्ड देने का निर्णय बहुत पूर्व ही ले चुकी थी भगवान बहाउल्लाह के चाचा रूसी राजदूत के मित्र थे उन्हें जब यह दुखद समाचार मिला तो वे रूसी दूतावास गये और सारी घटना सुनाई। राजदूत भगवान बहाउल्लाह पर आस्था रखता था। वह जानता था कि वे निरपराध हैं अतः दैवी प्रेरणा से वह तुरंत घोड़े पर चढ़कर दौड़ता हुआ उस अदालत में पहुंचा और ज्योंही अदालत भ० बहाउल्लाह को मृत्यु दण्ड

का आदेश देने वाली थी, वह बोला :—

"मुझे सुनिये मेरे पास आपको सुनाने के लिए एक बड़ा ही महत्वपूर्ण और आवश्यक सन्देश है।"

अदालत और दण्डाधिकारी इस आवाज को सुनकर हक्का-बक्का हो गये और उनसे कोई उत्तर नहीं बन पड़ा।

"क्या आप जरूरत से अधिक निर्दयता नहीं कर चुके हैं? क्या आप लोगों ने इन निरीह और बेगुनाहों में से अनेकों को पहले ही मौत के घाट नहीं उतार दिया है? क्या आपके खून की प्यास को शान्त करने को पहिले ही पर्य्याप्त खून खराबा नहीं हो चुका है? आप लोग कैसे कह सकते हैं कि इस महा-पुरुष ने ही शाह को गोली मारने की वह मूर्खतापूर्ण साजिश की थी? कुछ भी हो अब और अधिक अत्याचार नहीं होने चाहिये। इस निरपराध महापुरुष की रक्षा करने के लिए मैंने अपने देश की सहायता उपलब्ध करने का फैसला कर लिया है। इसीलिये मैं आपको सावधान करता हूं कि आज और इस क्षण के बाद इस राजपुत्र का यदि बाल भी बाँका किया गया तो इस अपराध की सजा में आपके शहर में खून की नदियाँ बहा दी जायेंगी। आप मेरी बात को जान लें, मैं आपको सावधान करता हूं कि मेरे कहे के विरुद्ध अगर आपने कुछ भी किया तो आपके लिए वह उचित न होगा। मेरा देश इस सम्बन्ध में मेरे साथ है।"

शीघ्र ही तिहरान के गवनर ने सम्भावित मृत्युदण्ड के आदेश को रद्द करके उन्हें देश निकाले का हुक्म दे दिया।

## अरुणोदय की वह पावन बेला जब धरती धन्य हुई

१२ नवम्बर सन् १८१७ ईसवी का वह पवित्रतम अरुणोदय-काल। इस अनन्त दिव्यतम विभूति का संसार-सागर में प्रवेश। ईरान के उत्तरी काश्यप सागर तटीय पावनतम प्रदेश माजिन्दरान का मूल निवासी वह प्रसिद्ध पूज्यनीय वंश। वह पवित्र आर्य वंश, जिसमें ईश्वरावतार जरथुस्त्र उत्पन्न हुये। वह वंश, जो अपनी सभ्रान्त ऐश्वर्यशालिता, धार्मिकता, उच्चता तथा दानशीलता के लिये विख्यात था। इसी महान वंश के परम सौभाग्यशाली थे, एक महापुरुष, मिर्जा बुजुर्ग नूरी। तेहरान के समीप ग्राम नूर के जागीरदार तथा मुखिया। इसी वंश में तिहरान नगर के सुन्दर प्रासाद में पृथ्वी का यह उद्धारक उत्पन्न हुआ। उनका नाम करण हुआ, 'मिर्जा हुस्सैन अली' तथा 'नूर के निवासी होने के कारण 'नूरी'। इन्हें ही महात्मा बाब की पवित्र लेखनी द्वारा 'बहाउल्लाह' अथवा 'ईश्वर का भाः' नामक शुभ उपाधि से सुशोभित किया गया।

बाल्यावस्था में ही उनका असाधारण तथा विलक्षण व्यक्तित्व रहा। पाठशाला में उन्होंने प्रवेश नहीं लिया, यह बात तिहरान में सर्व विदित है। अपनी बाल्यावस्था ही से वे अपने अन्य बाल सखाओं तथा सम्बन्धियों से भिन्न थे। लोग आश्चर्यचकित होकर कहते-इस बालक को अत्यन्त महान शक्ति प्राप्त है। विवेक बुद्धि और ज्ञान में वे अपनी आयु की तुलना में बहुत आगे थे। यद्यपि किसी अध्यापक के द्वारा उन्हें शिक्षा प्राप्त नहीं थी फिर भी जो कोई भी अपनी समस्यायें लेकर उनके समक्ष उपस्थित होते थे, उनकी कठिन से कठिन समस्याओं

का वे बड़ी सरलता से समाधान कर देते थे। भगवान राम, कृष्ण, गौतम आदि के समान उन्हें भी किसी भी विषय अथवा चर्चा का विशेषज्ञ माना जाता था। विषय चाहे विज्ञान का हो या कला से सम्बन्धित, दर्शन शास्त्र का हो या धार्मिक, उनके पास सभी समस्याओं के समाधान की युक्तियाँ विद्यमान थीं।

लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लेने की अत्यन्त असाधारण शक्ति उन्हें बाल्यकाल के आरम्भ से ही थी। इस मोहिनी शक्ति अथवा प्रबल आकर्षण को प्रत्येक अनुभव करता था। हर एक उनको देखकर मुग्ध हो जाता था तथा सभी लोग जब तब अवसर पाते ही उनके चारों ओर आ उपस्थित होते थे। वे अत्यन्त उदार स्वभाव के थे और आकाश के नीचे फैले हुये खुले वातावरण से उन्हें बहुत प्रेम था किन्तु लोगों से बात-चीत करते हुये उन्हें अत्यन्त सुख प्रतीत होता था।

## विलक्षण दैवी प्रतिभा का अनन्य उदाहरण

एक दिन की बात है कि अभी जब भ० बहाउल्लाह की उम्र केवल सात या आठ वर्ष की ही थी कि ईरान के शासक शाह ने उनके पिता से एक भारी रकम देने की मांग की। भ० बहाउल्लाह के पिता अत्यन्त धनवान थे अतः तुरन्तु ही उन्होंने शाह के कहने पर निश्चित धनराशि शाह को दे दी। कुछ समय पश्चात शाह ने दूसरी मांग की और इस बार भी उनके पिता ने शाह की मांग पूरी कर दी। लेकिन तीसरी बार भी जब शाह ने पिछली राशियों से भी कहीं अधिक बड़ी राशि की मांग की तो उनके पिता वह रकम अदा कर सकने में बिलकुल असमर्थ हो गये। जब वे इस धन का भुगतान न कर सके तो शाह नें उनके घर पर वसूली करने वालों को भेजा और उन्होंने बल-

पूर्वक उनके घर में प्रवेश कर लिया। वे लोग मकान की सारी साज सज्जा उठा ले जाने को ही थे कि भ० बहाउल्लाह ने विचारा "मैं इस मामले को स्वयं देखूंगा।"

उन्हें ज्ञात था कि शाह अपने तिहरान वाले महल से बाहर हैं और दस दिन की यात्रा की दूरी पर किसी स्थान पर रह रहे हैं। उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे जायेंगे और शाह से किसी न किसी तरह अवश्य मुलाकात करेंगे। उनके पिता उनके वहां जाने के पक्ष में नहीं थे, क्योंकि एक तो वे अभी बिल्कुल बालक ही थे और दूसरे हाल ही में गिरी बर्फ के कारण मौसम अत्यन्त ठण्डा हो रहा था। किन्तु वे इस बात का निर्णय कर चुके थे और रोकने पर भी अपने इस निर्णय पर अटल रहे।

दस दिन के सफर के पश्चात् वे जब शाह के आवास वाले नगर पहुंचे तो सबसे पहले उन्होंने शाह के प्रधान मन्त्री से मुलाकात की। प्रधान मन्त्री को उन्होंने अपने आने का कारण बताया जो उन्हें अपने साथ लेकर शाह से मुलाकात कराने ले गया। भ० बहाउल्लाह ने तब शाह से बातचीत की। जब वे बातें कर रहे थे तो ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे एक बालक नहीं अपितु तीस चालीस वर्ष का कोई प्रौढ़ व्यक्ति ही बातें कर रहा हो। उनके तर्क इतने स्पष्ट और उनकी मेधाशक्ति इतनी तीव्र थी कि शाह निस्तब्ध रह गया। अन्त में शाह को वसूली करने वालों को लिखना पड़ा कि इनके पिता मिर्जा बुजुर्ग को तंग न किया जाय।

भगवान बहाउल्लाह के पिता का स्वर्गवास होने पर ईरान की सरकार ने उन्हें अपने पिता का ओहदा स्वीकार करने को कहा क्योंकि उस समय ऐसी प्रथा थी कि पिता के स्थान पर

पुत्र को ओहदा दे दिया जाता था। उन्होंने कोई ओहदा स्वीकार करने से मना कर दिया। सरकार के पूछने पर प्रधान मन्त्री ने कहा कि "उन्हें उनके हाल पर ही छोड़ देना उचित होगा। ऐसा अधिकारी बनकर वे स्वयं को पतित नहीं कर सकते क्योंकि उनके जीवन का कोई दूसरा ही उद्देश्य है। मैं स्वयं उनके बारे में समझ सकने में असमर्थ हूं।"

## निर्धनों तथा निर्बलों के पिता वे द्विज दयाल'

मानव मात्र की सेवा करना भगवान बहाउल्लाह के जीवन का लक्ष्य था। वे अत्यन्त कृपालु व उदार हृदयी थे। उनके हृदय में निर्धनों के लिए विशेष एवं अपार सहानुभूति थी। उनके पास सहायता की कामना लेकर आने वालों को उनके द्वार से कभी निराश होकर नहीं लौटना पड़ा। उनके घर के द्वार हर एक के स्वागत के लिये सदैव खुले रहते थे। इसी कारण वे अपने प्रदेश के आस पास के क्षेत्रों में 'निर्धनों तथा निर्बलों का पिता' नाम से विख्यात थे तथा उनकी धर्मपत्नी 'माता सान्त्वना' के नाम से। सदैव ही दुखियों तथा दरिद्रों का भ० बहाउल्लाह के घर पर तांता सा बंधा रहता था।

उनके मित्र या शुभ चिन्तक आये दिन देखते कि वे बड़ी वेफिक्री और उदारता के साथ गरीबों को धन और सान्त्वना दे रहे हैं तो चेतावनी देते हुए कहते कि "इस तरह धन लुटा कर तुम एक दिन इन लोगों के समान ही दरिद्र बनकर रह जाओगे जिनके लिये तुम आज अपना सब कुछ न्यौछावर किये जा रहे हो।" पर उन पर इस चेतावनी का प्रभाव कभी नहीं पड़ा। लोग हैरान होकर एक दूसरे से पूछते, "आश्चर्य है कि यह व्यक्ति अपने स्वयं के घर-गृहस्थी के खर्चों और अपनी भावी

आवश्यकताओं के बारे में क्योंकर नहीं सोचता। जब भी देखते हैं किसी न किसी गरीब की झोली में कुछ न कुछ डालता ही रहता है। कुछ समझदार भी थे। वे कहते, "यह व्यक्ति दूसरे लोक का है।" कोई अत्यन्त सुन्दर सी आत्मा इसके भीतर छिपी है जो अभी साफ साफ नहीं दीख पड़ती मगर अज्ञात भविष्य में एक दिन यही छिपा हुआ रूप हमारे और संसार के सामने स्पष्ट रूप से प्रगट हो जायेगा।

## स्वदेश से निष्कासन

भ० बहाउल्लाह और उनके परिवार को ईरान सरकार ने ईराक चले जाने की आज्ञा दी। अब उन्हें मेसोपटामिया मरुस्थली के बगदाद नगर में अपना नया जीवन आरम्भ करना था। प्रस्थान की तैयारी के लिये कुछ ही समय दिया गया। वे अपने परिवार में लौट आये। वे बहुत दुर्बल हो गये थे। लोगों को आशा न थी कि वे अपनी क्षीण काया से अधिक दिनों तक जीवित रह सकेंगे। मौसम और भी कठिन हो गया था। हिमानी हवा शरीर की हड्डियों को भी कँपा देती थीं। ऐसी दशा में पूरे वस्त्र और भोजन के साधन न होने पर भी वे सब चल पड़े। सर्दियों का मध्यकाल था। चारों ओर बर्फ बिछी हुई थी, राह चलना कठिन था किन्तु फिर भी सब चल पड़े। बगदाद पहुंचने में इन्हें तीन मास का समय लगा। राह के परिश्रम और कष्टों का पार नहीं था। ये पैदल यात्रा करते हुए अपने गन्तव्य-स्थल तक कभी जंगलों के बीच, कभी सराय में शरण लेते हुए आँधी, वर्षा और हिमपात का सामना करते हुये, बड़ी बड़ी बाधायें, भूख और प्यास झेलते हुये पहुंचे। सारा सफर वे बीमारी और कमजोरी की दशा में तय करते रहे।

यदि आप विचार करें तो हर अवतार के सामने ऐसी ही कुछ समस्याएं आईं कि उसे अपना जन्मस्थान त्यागना पड़ा। भ० राम को ही लीजिये। १४ वर्ष के बनवास को और उसके अपरिमित कष्टों को क्या कोई भुला सकता है? भगवान कृष्ण बुद्ध आदि को अपना जन्मस्थान त्यागकर महान् कष्टों का सामना करना पड़ा।

### निर्जन वन में दो वर्ष तक एकान्तवास

भगवान बहाउल्लाह के बगदाद पहुँचते ही उनका एक सौतेला भाई मिर्जा याह्या भी एक साधु के वेष में वहां आ पहुंचा। जब भगवान बहाउल्लाह जंजीरों में जकड़े हुये थे तब वह भगोड़ा बना हुआ था। वहां आकर उसने सब लोगों को भड़काना आरम्भ कर दिया। जैसे ही भगवान बहाउल्लाह ने पथ-भ्रष्ट बाबियों को कुमार्ग से उबारना चाहा, वैसे ही मिर्जा याह्या ने कुछ स्वार्थी लोगों के उकसाने पर जिन्होंने पहले ही उस बदनाम व्यक्ति को अपने कुटिल इरादों की पूर्ति का साधन चुना था, उनके मंगलकारी नेतृत्व में रोड़े अटकाना आरम्भ कर दिया। इसके द्वारा संचालित यह विरोध इतना उग्र हो उठा कि भ० बहाउल्लाह ने विवाद के इस क्षेत्र से ही हट जाने का निश्चय किया। बाबी समाज पर आई हूई विपत्तियों को और बढ़ाने की उन्हें जरा भी इच्छा नहीं थी। अतः सुबह जागने पर उनके परिवार ने पाया कि वे वहां से चले गये हैं। मानव-समाज से ऐसे पृथ्थकरण का समय ईश्वरावतारों के जीवन में आया है।

भ० बहाउल्लाह का आत्म-निर्वासन भी एक परीक्षा थी। क्या उन्हें ही वह एकमात्र पथ प्रदर्शक बनना था जिसमें

बाबियों को सच्चा मार्ग दिखानेकी क्षमता हो ? समय की गति और उनकी अनुपस्थिति ही इसे निर्णयात्मक रूप से प्रमाणित करेगी। इन दिनों के विषय में उन्होंने जो लिखा है वह उनके इस निष्क्रमण का कारण स्पष्ट करता है। वे वहां से कुर्दिस्तान के इलाके में सुलैमानियां-पहाड़ पर चले गये। वहां वे अधिकतर गुफाओं में या किसानों और चरवाहों के बनाये हुये पत्थरों के झोंपड़ों में रहते। दो वर्ष संसार से दूर गुफाओं में रहते हुए वे तप करते रहे।

धीरे-धीरे बहाउल्लाह की ख्याति-सुलेमानियां के आस-पास फैल गई। पास पड़ौस का कोई भी व्यक्ति उनको नहीं पहचानता था, पर उनके कृपालु स्वभाव तथा बुद्धिमता पर सभी मुग्ध हो गये थे। उनकी बढ़ती हुई प्रसिद्धि बगदाद तक पहुंची और वहां के लोगों ने उस एकान्तवासी मनीषी के विषय में सुना जो उत्तर के पर्वतीय प्रदेश में प्रकट हुआ था, उनके ज्ञान सौम्यता उनकी तथा अदभुत अन्तदृष्टि की चर्चा थी। बाबी जो उनके सद् परामर्शों से वंचित हो गये थे, और दिन प्रतिदिन संघर्ष और मतभेद के दलदल में फंसते जा रहे थे, अब उनका मार्गदर्शन पाने की आतुरता से प्रतीक्षा कर रहे थे पर वे नहीं जानते थे कि उन्हें कहां खोजें ? जैसे ही उन्होंने सुलेमानियां के एक अज्ञात तपस्वी की चर्चा सुनी उन्होंने जान लिया कि इसके पीछे बहाउल्लाह ही थे। उन्होंने उनको खोजने तथा उनको वापस लौटने की याचना करने के लिये अपने दूत भेज दिये। वे जानते थे कि यह प्रभु की वाणी थी, उसकी नियति की रची योजना। बाबी समाज के लिए उनकी अनिवार्य्य उपस्थिति को समय ने सिद्ध कर दिया था।

१९ मार्च सन् १८५६ ई० को वे बगदाद लौट आये। अब से उनकी शक्ति, उनके वचनों तथा उनके आदर्शों का बाबी सहर्ष स्वागत करने लगे। उन्होंने बाबियों से कह दिया कि अपनी स्वतन्त्रता में किये गये अनाधिकार हस्तक्षेप का सामना वे किसी प्रकार की हिंसा से न करें। उनके दिव्य मार्गदर्शन में बावी फिर से एक उदात्त जीवन की ओर अग्रसर हुये।

## पुनः बगदाद वापस आना

अपने बगदाद वास की अवधि में उनकी दिव्य लेखनी से उनकी तीन सर्वाधिक प्रसिद्ध कृतियों का प्रकटीकरण हुआ। 'निगूढ़ वचन' 'सात उपत्यकायें' और 'किताबे इकान'।

टिगरिस नदी के तट पर विचरण करते हुये वे चिन्तन किया करते थे, प्रभु कितना निकट है और मनुष्य कितना दूर। प्रभु की करुणा और प्रेम का कैसा अजस्र प्रवाह उमड़ रहा है और कैसे दुराग्रह से मनुष्य इस अक्षय स्रोत का पान करना अस्वीकृत कर देता है। इस चिन्तन का परिणाम था 'निगूढ़ वचन' जो अत्यन्त प्रसाद युक्त एवं हृदयग्राही गद्य में लिखा गया है और उन शाश्वत सत्यों को अभिव्यक्त कर देता है जो अवतारों द्वारा प्रकाशित प्रत्येक धर्म का सार हैं। इसमें धर्म के मूल स्वरूप को प्रकट किया गया है—

"यह वह है जिसका अवतरण प्रभा और महिमा के उस साम्राज्य से हुआ है, और जिसका उच्चारण शक्ति और पौरुष की जिह्वा ने किया है और पुरातन प्रभु दूतों के प्रति जिसका प्रकाशन किया गया है, और सत्यानुरागियों के प्रति अपनी कृपालुता के प्रतीक स्वरूप हमने उनके सारतत्व को ग्रहण कर

उसे संक्षिप्त कर दिया है जिससे कि वे प्रभु की संविदा के प्रति निष्ठावान रहें। जीवन में उसके विश्वास को कृतार्थ करें और आध्यात्मिक राज्य में दिव्य सद्‌गुणों के रत्न की उपलब्धि करें।

शीघ्र ही भगवान बहाउल्लाह की ख्याति सारे बगदाद में फैल गई। लोग दूर-दूर से आते और उनके दर्शन-लाभ करने के उपरान्त खुशी-खुशी लौट जाते। अगले सात वर्षों तक भगवान बहाउल्लाह बगदाद में अत्यन्त आकर्षण के केन्द्र-बिन्दु बने रहे। सन्त, धार्मिक, नेता, कवि, विद्वान और गणमान्य जन, राजकीय अधिकारी, ईराक और फारस के प्रसिद्ध लोग, शाही वंश के राजकुमार, फारस की तमाम राहें तय करके केवल मात्र उनके दर्शन करने के उद्देश्य से आने वाले बाबी, अंग्रेजी साम्राज्य का कूटनीतिक सलाहकार, जिसने भगवान बहाउल्लाह को इंगलैण्ड की नागरिकता देकर यहां भारतवर्ष में घर देना चाहा था, जिसके लिए उन्होंने इन्कार कर दिया तथा स्वयं बगदाद का राज्यपाल तक उनसे मिला। सभी उनकी ख्याति, उनकी लेखनी और बुद्धि से मोहित होते चले गये।

## एक हत्यारे का निष्फल प्रयास

उनकी बढ़ती हुई इस ख्याति से एक ईर्ष्यालु मुल्ला नें अनपढ़ लोगों को उकसाया और जब वे अकेले सड़क पर चल रहे हों ऐसे समय उन्हें हानि पहुंचाने को भड़काया। वे जब ऐसे ही भड़काये गये लोगों को देखते तो निडर होकर उनके पास पहुंचते और उनसे पूछते कि वे चाहते क्या हैं ? और बाद में उस समय तक स्निग्ध परिहास करने लगते जब तक वे भूल नहीं जाते कि उन लोगों ने भगवान बहाउल्लाह को हानि

पहुंचाने की क्या योजना बनाई थी। उस मुल्ला ने जब यह देखा कि उसे निष्फलता मिल रही है तो उसने रिदा नामक एक व्यक्ति को उन्हें जान से मार देने के लिए नियुक्त किया। रिदा ने दो बार उन्हें मार डालने का प्रयत्न किया। पहली बार वह उनकी घात में कोट के भीतर पिस्तौल छिपाकर उनके पीछे सार्वजनिक स्नानागार तक गया किन्तु जब उसने निशाना लेना चाहा तो उसे ऐसा लगा कि उसमें गोली चलाने की शक्ति नहीं रही है। दूसरी बार वह भगवान बहाउल्लाह के प्राणों की घात में उस रास्ते पर बैठ गया जहां से भगवान बहाउल्लाह टहलते हुये निकलते थे। जब वह गोली चलाने को तैंय्यार हुआ और पिस्तौल हाथ में ली कि मारे डर के वह आप ही आप थरथराने लगा और पिस्तौल उसके हाथ से छूट कर धरती पर गिर पड़ी। इस घटना के समय भ० बहाउल्लाह के भाई भी उनके साथ थे। उन्होंने जब पिस्तौल उसके हाथ से छूटते देखी तो अपने भाई से कहा कि वे रिदा को उसका पिस्तौल लौटाकर उसे उसके घर तक पहुंचा दें।

## पुनः निर्वासन का आदेश

उनके शत्रुओं ने अपनी चालें बढ़ा दीं और वे उन्हें बगदाद से निर्वासित करने का प्रयत्न करने लगे। इन लोगों ने भ० बहाउल्लाह के विरुद्ध शाह को पत्र लिके कि वे हजारों लड़ाके सैनिकों को बुलाकर नगर पर धावा बोलकर इस्लाम-धर्म के पवित्र स्मारकों को नष्ट भ्रष्ट कर देना चाहते हैं। इस प्रकार की शरारतें नौ मास तक चलती रहीं। अन्त में शाह ने उन्हें बगदाद से निर्वासित करने का फरमान निकाल दिया और

टर्की के सुल्तान से निवेदन किया कि उन्हें इस्तमबूल नामक स्थान पर रहने दे। सुलतान तैय्यार हो गया।

वह दिन यानी जिस दिन उनके अनुगतों को यह ज्ञात हुआ कि भ० बहाउल्लाह को बगदाद छोड़ने के लिये मजबूर किया जा रहा है, बाबी सम्प्रदाय के जीवन का सबसे कठोर दिन था उन लोगों को अपने प्रियतम, अपनी प्रेरणा और यहाँ तक कि मानो उनके अपने प्राणों से ही अलग किया जा रहा था। उन्हें जब यह समाचार मिला तो उन्होंने भोजन का तथा सारी रात निद्रा का त्याग कर दिया। एक भी ऐसा नहीं था जो शान्त हो और अपने दुख को काबू किये हो। धीरे-धीरे फिर भी भगवान बहाउल्लाह ने अपनी प्रेममय कृपा से, अपने पवित्र शब्दों से तथा अपने साथ रह रहे हर एक वयस्क तथा हर एक बालक के लिए प्रकट किये अलग-अलग संदेशों से उनके हृदय को शान्त किया। विदाई के उपलक्ष में अपना रंज प्रकट करने तथा यह पूछने कि वे क्या करेंगे इतने अधिक लोग आये कि यात्रा के लिए तैय्यारी करना कठिन हो गया।

## विदाई की वह निर्मम बेला

२१ अप्रैल सन् १८६३ ई० (संवत १९२० विक्रमी) को भगवान बहाउल्लाह और उनके साथियों ने बगदाद छोड़ दिया। उनके चलने के पूर्व बगदाद नगर की समस्त जनता उन्हें विदा देने तथा उनके अन्तिम दर्शनों के लिये उमड़ आई। उस दिन रास्ते में अपार जनसमूह उमड़ आया था। रो-रोकर बिलखती हुई माताओं ने आगे बढ़कर अपने सुकुमार बच्चों को भगवान बहाउल्लाह के चरणों के पास रख दिया। भगवान ने

हर एक बालक को अपने कर-कमलों में लिया, उन्हें आशीर्वाद प्रदान किया और अत्यन्त कोमलता तथा प्रेम के साथ उन्हें उनकी माताओं के हाथों सौंप दिया।

कितना हृदय-विदारक समय था। लोग स्वयं को उनकी राह पर गिरा देते कि कदाचित चलते हुए भगवान के चरण-कमलों का स्पर्श मिल जाय। टिगरिस नदी के तट तक जनता उनके साथ-साथ आई। भगवान राम की विदाई को मानो आज भारत में सरयू के तीर पर नहीं बल्कि भारत से दूर टिगरिस नदी के तट पर एक बार पुनः दोहराया जा रहा हो। लोग उनके चारों ओर उमड़ आये। हर एक की यह साध थी कि उनके जी भरकर दर्शन कर लें और उनके सान्निध्य की सुखमय अनुभूति को एक क्षण भी उन्हें बिना देखे नष्ट करना वे नहीं चाहते थे। अन्त में वह समय भी आ गया जब नौका तैयार हो गई और केवट ने उसे टिगरिस की धार पर छोड़ दिया। नौका ज्यों-ज्यों आंखों से ओझल होती जाती लोगों की आंखों में त्यों-त्यों आंसुओं की धारायें बढ़ती जातीं : इस तट पर खड़े हुए लोगों की सुबकियां फूटी पड़ती थीं ओर उनके वियोग का यह दुख उनकी आंखों से आंसू बनकर उमड़ पड़ता था।

### आ गया वह चिर प्रतीक्षित, संसार की नौका का तारणहार

पड़ाव पर पहुंचते ही साथ आये हुऐ लोगों ने भगवान बहाउल्लाह के लिये एक खेमा तैयार किया और अन्य लोगों के लिए भी पांच-छः खेमे खड़े कर दिये। वे जिस समय रिज-वान की इस पुष्प वाटिका में आवास कर रहे थे, मौसम तूफानी

था। भयंकर आंधी का साम्राज्य छा रहा था और हवा में बवंडर उठ रहे थे । यह आँधी-तूफान की अवस्था कई दिनों तक रही। भगवान बहाउल्लाह का खेमा तेज हवा के झोकों के वातावरण में हिलोरें लेने लगा था। इसलिये वे बारी-बारी से खेमे की बंधी हुई रस्सियों पर बैठते रहे। क्या दिन में क्या रात में, सारी-सारी रातें वे खेमे की इन रस्सियों को थामे बैठते रहे। ऐसा करते हुये उन्हें यह अनुभव करने में अपार आनन्द प्राप्त होता कि वे अपने प्रतापवान प्रभु के समीप विद्यमान हैं।

रिजवान की इस वाटिका में वे बारह दिन तक रहे। वे बारह दिन अब 'रिजवान के भोज' के नाम से पुकारे जाते हैं। या 'स्वर्ग का भोज' कहा जाता है। बहाई-वर्ष में इन बारह दिनों का अत्यन्त पावन महत्व है। यह अप्रैल की बाइसवीं तारीख थी। वे शान्त गम्भीर और अविचलित थे। वह चिर प्रतीक्षित 'क्षण' आ गया था। उस समूह के सम्मुख उन्होंने स्वयं को प्रकट किया।

वे ही थे, वह अपेक्षित अवतार जिसके पथ में भगवान बाब ने अपने जीवन की आहुति दी थी। वह जिसे प्रभु को अवतरित करना था। समस्त धर्मों का चिर प्रतीक्षित, पारसी धर्म का शाह बहराम, बौद्ध धर्म का मैत्रेयि अमिताभा पंचम बुद्ध, हिन्दू धर्म का प्रसिद्ध 'कल्कि' अवतार, समस्त उपासनाओं का आराध्य, उस पिता का पद लेकर आया हुआ मसीहा (Glory of God) न्याय के दिन का अधिपति।

अन्त में ईश्वर ने विश्व के मानव-समुदाय को दिये अपने पिछले वचन को पूरा कर दिया था और संसार को उसका

सबसे बड़ा शिक्षक प्रदान कर दिया था । भविष्यवाणियों के युगों का अन्त आ गया था। सन्त ऋषियों, महर्षियों की वाणियों के सार्थक तथा साकार होने का युग आ गया था। एक लम्बी प्रतीक्षा के उपरान्त भगवान कृष्ण का कुरुक्षेत्र में दिया हुआ यह वचन पूरा हो गया था—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।

आ गया था वह संसार की डगमगाती नौका का तारणहार 'सत्य युग' का संस्थापक। यही वह सम्वत् १९२० विक्रमी था जिसके विषय में उत्तरी भारत में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है।

**जब आवै सम्वत बीसा। तो मुहम्मद रहे न ईसा ।।**

"यह वह दिन है जबकि अदृश्य संसार पुकार रहा है : हे धरती ! तू बड़ी सौभाग्यशाली है क्योंकि तू प्रभु का पदतल है और उसके सिंहासन का स्थान है। 'ज्योति-लोक' यह कह रहा है काश ! मेरा जीवन भी तेरे हेतु बलिदान हो जाता क्योंकि प्रभु-अवतार ने तेरे ऊपर अपनी प्रभु-सत्ता स्थापित करली है और ऐसा उसके नाम की उस शक्ति के द्वारा होता, जिसका वायदा भूत और भविष्य की सभी वस्तुओं का किया गया था। उठो और सम्पूर्ण विश्व को बधाई दो कि सर्वकृपालु ने रिजवान नामक स्वर्ग में पदार्पण किया है अतः मनुष्यों को उस आनन्दोद्यान तक पहुंचाओ जिसे प्रभु ने बैकुण्ठ में अपना स्थान बनाया है"।

"प्रभु के प्राणियों को केवल प्रेम और दया की आंख से ही देख क्योंकि हमारी प्रिय कृपादृष्टि ने ही सम्पूर्ण संसार को जीवन प्रदान किया है और भूलोक तथा स्वर्ग हमारी कृपाओं की चहार दीवारी से घिरे हुये हैं। यह वह युग है जबकि प्रभु के सेवक जीवन प्रदायक जल का अमृतपान करते हैं—ऐसा युग जबकि प्रभु के प्रेमी जन अमृत की नदी में बहते हुए मधुर जल का रसास्वादन कर सकने में समर्थ हो सकते हैं। उसकी एकता, उसके अस्तित्व उसकी सार्वभौमिकता तथा उसकी अनन्तता को स्वीकार करने वाले प्रभु की इस बात को भी वे मानते हैं.. साम्राज्य मेरा है और मैं स्वयं स्वेच्छा से इसका शासक हूं।"

मस्तक झुक गये जब इस उदघोषणा की विराटता नें मानवों के अन्तकरणों को छुआ। उदासी छट गई, आनन्द, स्वर्गीय आनन्द चारों ओर छा गया।

"ओ ज्ञान के वाहको ! ईश्वर को धन्यवाद दीजिए कि आपके सन्मुख उस दिव्य ज्ञान का द्वार जो बन्द प्रतीत होता था अब पूर्ण रूपेण खुल चुका है। अमर जीवन की दिव्य सरिता एक सुदूरवर्ती नगर से बह उठी है तथा इस विश्व के लोगों पर अकथनीय आशीर्वाद बरसा रही है। जिस किसी ने भी इस स्वर्गीय सम्मान के महासागर की एक बून्द भी ग्रहण की है चाहे वह कितना ही छोटा या अनपढ़ ही क्यों न हो उसने अपने में उस शक्ति को पा लिया है जो अगाध रहस्यों को खोजने की सामर्थ्य रखती है। उसने अत्यन्त प्राचीन विद्वता के गूढ़तम रहस्यों की व्याख्या करने की सामर्थ्य अनुभव की है। जो कोई भी धर्म की व्याख्या करने वाला श्रेष्ठ विद्वान ही क्यों न हो

जिसने अपने स्वयं के ज्ञान और सामर्थ्य पर भरोसा रखना पसन्द किया और ईश्वर के संदेश का तिरस्कार किया है वस्तुतः उसने स्वयं को ही ऐसे हानि और अपमान के वशीभूत होकर तिरस्कृत कर लिया है।" —बहाउल्लाह

"ईश्वर के सिंहासन के नीचे अगाध आध्यात्मिक सम्पदा के भण्डार छिपे हैं, उन भण्डारों की कुंजियां संत तथा कवियों, की वाणियां हैं", "जिन्होंने भी इस शब्द सागर में छिपे अनमोल मोतियों को खोज लिया है वे इस शक्तिशाली पवित्रतम प्रभु के अवतार के तेज को समझ पाए हैं। इस अवतार की श्रेष्ठता से उस सम्मान की कल्पना की जा सकती है जिसकी आवश्यकता उसके विश्वास पात्र अनुयाइयों को होगी। उस सत्य प्रभु के न्याय की सौगन्ध इन अवतारों में श्रद्धा रखना पृथ्वी के सभी कोषों से अधिक धनाढ्य हैं। प्रभु भक्त सुखी रहता है, परन्तु प्रभु का विरोधी सदैव दुखी रहता है।"

"सत्य ही यह वह युग है जिसमें मानव जाति अपेक्षित ईश्वरावतार, के स्वरूप का दर्शन तथा उसकी वाणी का श्रवण कर सकती है। ईश्वर पुकार रहा है, तथा उसका प्रकाश मनुष्यों को प्रकाश प्रदान करने को उद्यत है। यह प्रत्येक मनुष्य के लिए, आवश्यक हो जाता है कि वह अपने हृदय से सभी बुरे विचारों को निकाल दे और एक स्पष्ट एवं सच्चे मन से उसके अवतारों के चिन्हों उसके धार्मिक उद्देश्यों के प्रमाणों तथा उस की ज्योति के प्रतीकों का अवलोकन करे।"

"यह युग एक महान युग है, सभी धार्मिक ग्रन्थों के प्रसंग इसको ईश-दिवस के रूप में प्रमाणित करते हैं, प्रत्येक ईश्वरी

अवतार तथा ईश दूत कीं आत्मा इस अलौकिक युग की व्याकुलता से प्रतीक्षा करती रही है। प्रभु आशा से जैसे ही उसका धर्मावतार (डेढ़ शताब्दी पूर्व) अवतरित हुआ ईश्वर के कुछ चुने हुए भक्तों को छोड़कर सभी लोग गूंगे तथा बहरे हो गए, अर्थात् वे न तो उसकी वाणी ही सुन सके और न उसकी कीर्ति का वर्णन ही कर सके''।

''उठिए और सम्पूर्ण विश्व को बधाई दीजिए कि सर्व कृपालु वे बैकुण्ठ (रिजवान के उपवन) में पदार्पण कर लिया है, अतः मनुष्यों को आनदोद्यान तक पहुंचाइए। आपको उसके शक्तिशाली तूर्य के रूप में चुना गया है, जिसका महानाद सम्पूर्ण मानव जाति के पुनरुद्धार का प्रतीक है''

—बहाउल्लाह

---

श्री एस. सागर द्वारा बंगाल प्रेस दिल्ली-६ में मुद्रित।

3/-